



# कषाय-मुक्ति

(सुगम मोक्ष मार्ग)

लेखक

स्व. प्रतापचन्दजी भूरा

:: प्रकाशक ::

चैन रूप भूरा

ललवाणी मौहल्ला, नई लेन

गगाशहर (बीकानेर)

पुस्तक	· कषाय-मुक्ति (सुगम मोक्ष मार्ग)
लेखक	स्व प्रतापचन्दजी भूरा
प्रकाशक	चैन रूप भूरा
प्रथम अनावरण	अगस्त, 2006
मुद्रक	सुराणा उद्योग, वीकानेर 0151-2272964, 2272967

प्राप्ति स्थान  
**चैनरूप भूरा**  
ललवाणी मौहल्ला, नई लेन  
गंगाशहर (वीकानेर)  
फोन 0151-2272964

## प्राक्कथन

भारतीय सस्कृति के विविध आयामो मे कषाय मुक्ति के आयाम पर प्रबलतम बल दिया गया है। अनन्त की यात्रा मे सायन्त्रिक को प्रेरित किया हे कि अगर तुम्हे जीवन को सर्वोपरि बनाना है तो सर्व प्रथम तू कषाय से विमुक्त बन। जब तक कषाय की शृखला से आबद्ध है तब तक अपने मुख्य मुकाम अर्थात् लक्ष्य को साध नही सकता।

रामचरित्र मानस के प्रणेता गोस्वामी तुलसी ने भी क्या सटीक कहा है कि—

तुलसी मीठे वचन से, सुख उपजत चहुँ ओर।

वशीकरण इक मन्त्र है, परिहर वचन कठोर।।

ससार एक अजायबघर है जिसमे भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोग रहते है। वे अपनी वृत्ति/व्यवहार के द्वारा सुख-दुख की परिणति को प्राप्त करते है। यदि इन काषायिक वृत्तियो का परिहार करदे तो व्यक्ति स्वर्गिक छटा से अनुप्राणित होकर अपने गन्तव्य तक पहुँचने मे सफल हो सकता है।

आगम मे कषाय के विषय मे विश्लेषण करते हुए बताया है कि देशोन कोटि (करोड वर्ष) पर्यन्त की गई तपश्चरण रूप क्रिया व चरित्र का जिस रूप मे उपार्जन किया वह एक मुहूर्त काल तक की गई कषाय से नष्ट हो जाती है। इसलिए वेयक्तिक जीवन मे काषायिक परिणति से दूर रहना चाहिए।

सदा समभाव की अवस्था मे विचरण करते हुए लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयास करना चाहिए। अन्यत्र भी कहा गया है कि—

प्रथमे य शान्त, ते शान्त मे मति।

धातुक्षीयमानेषु शान्त को न जायते।।

इन पुस्तको मे इन अवगुणो को छोडने के लिए भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो से साधना करने की विधियो पर प्रकाश डाला गया है। जैनागमो मे स्वाध्याय-तप मे विविधता को बहुत महत्त्व दिया गया है। अत पुस्तक मे कुछ बातो की विविधता दृष्टिगोचर हो रही है जो कि साधना का एक अग है।



धर्म कोविद, तत्त्वज्ञ श्रीमान् प्रतापचन्द्रजी सा भूरा ने इन पुस्तकों को स्वयं जीवनपर्यन्त साधना करके अपने मौलिक अनुभव के आधार पर लिखी हैं, अतः ये आत्मा को छूती हैं। इनको पढ़ना, इनका स्वाध्याय करना और जीवन की प्रवृत्तियों में इनका समायोजन करना कर्मों के नारा में प्रत्येक व्यक्ति के लिए सहायक है।

आज मानसिक तनाव से पीड़ित समाज के लिये ऐसी ही पुस्तकों की महती आवश्यकता भी है जो अवगुणों को दूर करने एवं मानसिक तनाव को हटाने में अपनी अहम भूमिका अदा कर सकती हैं।

इन पुस्तकों की उपयोगिता इस बात से प्रमाणित होती है कि इनमें से "समता-जीवन", "ध्यान एक अनुशीलन", "कषाय मुक्ति" पहला भाग और "कषाय मुक्ति" दूसरा भाग धार्मिक परीक्षा बोर्ड के भूषण परीक्षा के पाठ्यक्रम में समता विभूति आचार्यश्री नानेश की कृपा से रखी गई।

कषाय और अन्य अवगुणों से मुक्त होने के लिए क्षमा, विनय, सत्याचरण, लोभ-मुक्ति आदि गुण प्राप्त करने के लिए कषाय-मुक्ति की पुस्तकों को केवल पढ़ना ही काफी नहीं है, किन्तु इन पुस्तकों को केवल कुछ महीनों तक प्रतिदिन निरन्तर स्वाध्याय करना आवश्यक है। पाठकों की सुविधा के लिए समग्र पुस्तकों की सामग्री इसी एक पुस्तक में सम्मिलित कर दी गई है।

विश्वास है कि पाठकों को यह पुस्तक "समता आचरण" के लक्ष्य में शिखर की ओर बढ़ाने के लिए स्फटिक-सोपानों की भाँति "कषाय-मुक्ति" का मार्ग सुझाएगी।

भगवान महावीर ने अपनी मूलवाणी में भी कहा है—

कसिणा कसाया सिचन्ति, जीवस्स पुण्णवस्स।—उत्तमपुण्यमनं भवति

कषाय ही हमारे पूर्व भवों के आधार पर आगामी जन्म की भूमिका तैयार करते हैं। अतः इनका परित्याग कर हम सिद्धि प्राप्त करने के लिए यही पुस्तक का लक्ष्य है। सुज्ञ पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

## प्रकाशकीय

उक्त प्रकाशन वरिष्ठ लेखक निष्ठावान प्राध्यापक ओर साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के सयोजक/पजीयक स्व प्रतापचन्दजी भूरा की इन कृतियों/पुस्तको का सग्रह है—कषाय मुक्ति प्रथम भाग (समता आचरण, सुवोध मोक्ष-मार्ग), द्वितीय भाग (कषाय-मुक्ति एक विवेचन), तीसरा भाग एव चोथा भाग (धर्म कथा द्वारा स्वाध्याय व तप), पॉचवॉ भाग (स्वाध्याय-सग्रह मोक्ष-मार्ग), छठा भाग (धर्म विचार सार), सातवॉ भाग (दोष मत दो निमित्त को), आठवॉ भाग (सिद्ध पद प्राप्ति की साधना), नौवॉ भाग ('समीक्षण ध्यान' मेरी दृष्टि मे), दसवॉ भाग (अभय बनूंगा, सिद्ध बनूंगा) ग्यारहवॉ भाग (मोक्ष मार्ग का पथिक), बारहवॉ भाग (कषाय व मोह छोडने के उपाय) एव ध्यान एक अनुशीलन ।

पुस्तके सर्वसाधारण पाठको द्वारा उंपयोगी समझी गई है व इनकी माँग भी काफी रही इसलिए समय-समय पर धर्मनिष्ठ सुश्रावको तथा श्री साधुमार्गी जैन सघ गगाशहर-भीनासर द्वारा इनका प्रकाशन कराया जाता रहा, जिनका विवरण इस प्रकार है—प्रथम भाग, प्रथम सस्करण, मई 1984, प्रति 2100, द्वितीय सस्करण, अगस्त 1987, प्रति 2200, द्वितीय भाग, प्रथम सस्करण, 1986, प्रति 2000, द्वितीय सस्करण, अगस्त 1987, प्रति 2200, तीसरा भाग, प्रथम सस्करण, फरवरी 1988, प्रति 3000, चौथा भाग, प्रथम सस्करण, जुलाई 1988, प्रति 2500, पॉचवॉ भाग, प्रथम सस्करण, जून 1989 प्रति 2500, छठा भाग, प्रथम सस्करण, सातवॉ भाग, प्रथम सस्करण, अक्टूबर 1990, प्रति 4000, आठवॉ भाग, प्रथम सस्करण, सयुक्त 4 से 8 भाग, सवत् 2049, नौवॉ भाग, प्रथम सस्करण, दसवॉ भाग, प्रथम सस्करण, सितम्बर 1993, प्रति 3000, ग्यारहवॉ भाग, प्रथम सस्करण, जुलाई 1995, प्रति 1500, बारहवॉ भाग, सयुक्त 9 से 12 भाग, प्रथम सस्करण, जुलाई 1996, प्रति 1100, ध्यान एक अनुशीलन, प्रथम सस्करण, जनवरी 1986, प्रति 2500 ।

यह प्रकाशन पूज्य पिताश्री एव मातुश्री की पुण्य स्मृति मे कराया जा रहा है ।

—चैनरूप भूरा

धर्म कोविद, तत्त्वज्ञ श्रीमान् प्रतापचन्दजी सा भूरा ने इन पुस्तकों के स्वयं जीवनपर्यन्त साधना करके अपने मौलिक अनुभव के आधार पर लिखी हैं, अतः ये आत्मा को छूती हैं। इनको पढ़ना, इनका स्वाध्याय करना अपने जीवन की प्रवृत्तियों में इनका समायोजन करना कर्मों के नाश में प्रत्यक्ष सहायक है।

आज मानसिक तनाव से पीड़ित समाज के लिये ऐसी ही पुस्तकों की महती आवश्यकता भी है जो अवगुणों को दूर करने एवं मानसिक तनाव को हटाने में अपनी अहम भूमिका अदा कर सकती है।

इन पुस्तकों की उपयोगिता इस बात से प्रमाणित होती है कि इनमें से "समता-जीवन", "ध्यान एक अनुशीलन", "कषाय मुक्ति" पहला भाग और "कषाय मुक्ति" दूसरा भाग धार्मिक परीक्षा बोर्ड के भूषण परीक्षा के पाठ्यक्रम में समता विभूति आचार्यश्री नानेश की कृपा से रखी गई।

कषाय और अन्य अवगुणों से मुक्त होने के लिए क्षमा, विनय, सत्याचरण, लोभ-मुक्ति आदि गुण प्राप्त करने के लिए कषाय-मुक्ति की पुस्तकों को केवल पढ़ना ही काफी नहीं है, किन्तु इन पुस्तकों का क्रमशः कुछ महीनों तक प्रतिदिन निरन्तर स्वाध्याय करना आवश्यक है। पाठकों की सुविधा के लिए समग्र पुस्तकों की सामग्री इसी एक पुस्तक में समाहित कर दी गई है।

विश्वास है कि पाठकों को यह पुस्तक 'समता आवरण' के उन्नत शिखर की ओर बढ़ाने के लिए स्फटिक-सोपानों की भाँति 'कषाय-मुक्ति' का मार्ग सुझाएगी।

भगवान महावीर ने अपनी मूलवाणी में भी कहा है—

कसिणा कसाया सिंचन्ति, जीवस्स पुण्णभवस्स।—उत्तमव्ययनं कर्त्तुं

कषाय ही हमारे पूर्व भवों के आधार पर आगामी जन्मों की भृत्यता तैयार करते हैं। अतः इनका परित्याग कर हम सिद्धि साधकों को प्राप्त करने के लिये यही पुस्तक का लक्ष्य है। सुझ पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

दिनांक : 05-08-2006

मनमोहन दास

बोथरा चौक, गगाशहर

..... कषाय मुक्ति ३

## प्रकाशकीय

उक्त प्रकाशन वरिष्ठ लेखक निष्ठावान प्राध्यापक और साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के सयोजक/पजीयक स्व प्रतापचन्दजी भूरा की इन कृतियों/पुस्तको का संग्रह है—कषाय मुक्ति प्रथम भाग (समता आचरण, सुबोध मोक्ष-मार्ग), द्वितीय भाग (कषाय-मुक्ति एक विवेचन), तीसरा भाग एव चोथा भाग (धर्म कथा द्वारा स्वाध्याय व तप), पाँचवाँ भाग (स्वाध्याय-संग्रह मोक्ष-मार्ग), छठा भाग (धर्म विचार सार), सातवाँ भाग (दोष मत दो निमित्त को), आठवाँ भाग (सिद्ध पद प्राप्ति की साधना), नौवाँ भाग ('समीक्षण ध्यान' मेरी दृष्टि मे), दसवाँ भाग (अभय बनूंगा, सिद्ध बनूंगा) ग्यारहवाँ भाग (मोक्ष मार्ग का पथिक), बारहवाँ भाग (कषाय व मोह छोड़ने के उपाय) एव ध्यान एक अनुशीलन।

पुस्तके सर्वसाधारण पाठको द्वारा उपयोगी समझी गई हैं व इनकी माँग भी काफी रही इसलिए समय-समय पर धर्मनिष्ठ सुश्रावको तथा श्री साधुमार्गी जैन सघ गगाशहर-भीनासर द्वारा इनका प्रकाशन कराया जाता रहा, जिनका विवरण इस प्रकार है—प्रथम भाग, प्रथम सस्करण, मई 1984, प्रति 2100, द्वितीय सस्करण, अगस्त 1987, प्रति 2200, द्वितीय भाग, प्रथम सस्करण, 1986, प्रति 2000, द्वितीय सस्करण, अगस्त 1987, प्रति 2200, तीसरा भाग, प्रथम सस्करण, फरवरी 1988, प्रति 3000, चौथा भाग, प्रथम सस्करण, जुलाई 1988, प्रति 2500, पाँचवाँ भाग, प्रथम सस्करण, जून 1989 प्रति 2500, छठा भाग, प्रथम सस्करण, सातवाँ भाग, प्रथम सस्करण, अक्टूबर 1990, प्रति 4000, आठवाँ भाग, प्रथम सस्करण, सयुक्त 4 से 8 भाग, सवत् 2049, नौवाँ भाग, प्रथम सस्करण, दसवाँ भाग, प्रथम सस्करण, सितम्बर 1993, प्रति 3000, ग्यारहवाँ भाग, प्रथम सस्करण, जुलाई 1995, प्रति 1500, बारहवाँ भाग, सयुक्त 9 से 12 भाग, प्रथम सस्करण, जुलाई 1996, प्रति 1100, ध्यान एक अनुशीलन, प्रथम सस्करण, जनवरी 1986, प्रति 2500।

यह प्रकाशन पूज्य पिताश्री एव मातुश्री की पुण्य स्मृति में कराया जा रहा है।

—चैनरूप भूरा

# धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्री प्रतापचंदजी भूरा परिचय

जन्म स्थान	: देशनोक
जन्म	विक्रम सवत् 1962
पिता	श्री सदासुखजी भूरा
माता	वृद्धिदेवी
दादा	श्री चौथमलजी भूरा
श्वसुर	श्री सेसमलजी कोचर (मेहता), सोजत सिटी
धर्म पत्नी	स्व नेमकवर
शैक्षणिक योग्यता	Intermediate from Board of High School & Intermediate Education, United Pro- vinces, Allahabad in 1928 : B.A from Agra. : B.T from Banaras Hindu University, Banarsa
स्कूल काल की उपलब्धियाँ	करणी हाई स्कूल, देशनोक छात्र सन के समय पद को सुशोभित किया।
धार्मिक एव सामाजिक उपलब्धियाँ	अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन सघ द्वारा सन्मिति। साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के सन्मिति। पजीयक के पद पर लम्बे समय तक अपनी सेवाएँ दी। श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर-गंगाशहर के सन्मिति/ उपमन्त्री 1970 से 1986 तक। 21-10-1984 से 06-09-1986 तक साधुमार्गी जैन सघ गंगाशहर-भीनासर के सन्मिति। 2019 से 2038 तक स्थानीय साधुमार्गी जैन सघ दीकानेर गंगाशहर भीनासर द्वारा सम्मानित।

# कषाय मुक्ति : समता आचरण

## सुबोध मोक्ष — मार्ग

प्रथम भाग

### 1. अहंकार

आचार्यश्री नानालालजी म सा का श्रमणोपासक 10 जनवरी 1984 पृष्ठ नव पर कथन है—“समता भावना पाने के लिये सर्व प्रथम अहमत्व और ममत्व विसर्जन करना आवश्यक है।”

प्राणी के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के उत्थान में अहंकार सबसे बाधक तत्त्व है। 1 अहंकार शराब की तरह मनुष्य को पागल जैसा बना देता है। शराब पीने से नशा आता है किन्तु अहंकार से तो जैसे ही चौबीसो घंटे नशा रहता है। अहंकार से मनुष्य की बुद्धि दब जाती है। उसे अच्छे और बुरे का भेद देखना बंद हो जाता है। वह गलत निर्णय पर पहुँच जाता है और गलत काम कर डालता है। ऐसे कामों के लिये उसे बाद में बहुत पछताना पड़ता है। 2 अहंकार से मित्रों की संख्या घट जाती है और शत्रुओं की संख्या बढ़ जाती है। दूसरे लोग उससे भीतर ही भीतर घृणा करने लगते हैं और उसे नीचा दिखाने की ताक में रहते हैं। मौका मिलने पर लोग अभिमानी का आर्थिक नुकसान भी करते हैं। 3 अहंकारी सभी को अप्रिय लगता है। उसे कोई मन से सहयोग देना नहीं चाहता। 4 अहंकार से अशुभ कर्मों का आगमन और बधन होता है। 5 अहंकार से दान, शील, तप आदि अच्छी करणी का फल भी प्रायः निरर्थक-सा बन जाता है।

दूसरों को मूर्ख समझने वाला और स्वयं की बुद्धि का अभिमान करने वाला तन्दुल मत्स्य सातवे नरक में जाता है। वह सोचता है—“यदि मैं इस बड़े मत्स्य की जगह होता तो एक भी मछली को बाहर नहीं जाने देता। सभी को निगल जाता।” अभिमान में की हुई भाव हिंसा से वह महा भयंकर अशुभ कर्मों का बंध करके सातवे नरक जाता है। अहंकार सभी बुराइयों की जड़ है।

बोध धर्म में अस्मिता-अभिनिवेश अर्थात् अहंकार को कर्मों के बंध का कारण माना गया है। जब भारत से धर्मबोधि नामक बौद्ध भिक्षु चीन गये तब



उनकी क्रिया भी कितनी ही कठिन और उच्च हो, किन्तु जरासी असावधानी होने पर अहकार से उनका सारा तप और धार्मिक क्रियाएँ मोक्ष प्राप्ति की दृष्टि से प्रायः निरर्थक-सी बन जाती हैं।

मनुष्य को सबसे बड़ा अहकार अपनी बुद्धि का होता है। मूर्ख, अशिक्षित, अज्ञानी, दीन और भिखारी भी अपनी बुद्धि को सबसे बड़ी मानता है। किसी प्राणी को अपनी बुद्धि का अंत नहीं दीखता। यह मनुष्य का स्वभाव-सा बन गया है कि वह प्रायः दूसरों के कार्यों में त्रुटियाँ देखता रहता है। इससे उसके अहकार की वृद्धि होती रहती है। जो प्राणी दूसरों में गुण देखने की कोशिश करता है वह अहकार से बच जाता है और विनय गुण को प्राप्त करता है।

अहकार जब उग्ररूप धारण करता है तो वह क्रोध के रूप में प्रकट होता है। वह लड़ाई-भगड़े और विनाश का कारण बन जाता है। बड़े-बड़े विश्व युद्ध भी अहकार की प्रेरणा से होते हैं।

अहकार मनुष्य की आँखों में, चेहरे पर, चाल में, बोली में, भाषण में, कामों में, पोशाक में और प्रायः प्रत्येक क्रिया में प्रकट होता रहता है। अहकारी प्रायः सबसे आगे ऊँचे आसन पर बैठता है। भीड़ में वह सबके बीच में मुखिया बनता है। उसके मुँह से प्रायः अपनी प्रशंसा की बातें निकलती हैं। उसके वाक्यों में 'मैं, मैंने, मुझे, मेरे द्वारा' आदि शब्द निकलते रहते हैं।

निरभिमानी व्यक्ति किनारे दूर कोने में रहता है। वह बहुत कम बोलता है। वह स्वयं को बड़ा नहीं बताता किन्तु हर काम का श्रेय दूसरों को देता है। उसकी बोली मधुर और प्रिय लगती है। उसकी बात सुनने से सुनने वालों को प्रसन्नता और शांति मिलती है।

अहकार सब दुर्गुणों का मूल है। अहकार छूटने से बाहुबलीजी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। अहकार छूटने के ये उपाय हैं—

अहकार से होने वाली हानि का बार-बार प्रतिदिन अध्ययन और चिंतन किया जाय।

अपने अवगुणों की सूची बनावे, उनके लिये मन में पश्चात्ताप करे, उन्हें छोड़ने का सकल्प और प्रयास करे।

अपने से ऊपर बड़ों के गुण देखे जावे और उनसे अपनी तुलना की जावे। क्या मेरे पास शालिभद्रजी के बराबर धन, अभयकुमारजी के बराबर बुद्धि, गौतम स्वामी के बराबर ज्ञान है? क्या मैं राजा हरिश्चन्द्र जैसा दानी





परिणाम भी अलग-अलग हैं। वे मरने के बाद सब साथ नहीं रहते। कुछ वही रह जाते हैं, कुछ तिर्यच बन जाते हैं, कुछ मनुष्य बन जाते हैं। वे सब अलग-अलग हो जाते हैं। वास्तव में सभी जीव अलग-अलग हैं, सब स्वतंत्र हैं, एक दूसरे से पृथक् है। कोई किसी का हमेशा का साथी नहीं है।

हम मानव तो बहुत विकसित प्राणी हैं। हमारे सबके पौद्गलिक शरीर भी अलग-अलग हैं, कर्मण शरीर भी अलग-अलग हैं, हमारे विचार, हमारे स्वार्थ, जीवन पथ, करणी, मन के परिणाम, हमारे पिछले जन्मों के स्थान जहाँ से हम आये हैं और भविष्य के जन्मों के स्थान जहाँ हमें इस देह को छोड़ कर जाना है वे सभी अलग-अलग हैं, हर दृष्टि से हम लोग अलग-अलग हैं। कोई किसी का आश्रित नहीं है, किसी का स्थायी साथी नहीं है।

परिवार में कोई किसी का 'अपना' नहीं है। भाई-भाई, पिता-पुत्र, यहाँ तक कि पति-पत्नी में भी अनेक बार अपने-अपने विचारों और स्वार्थ भेद के कारण भयकर झगड़े और अलगाव पैदा हो जाते हैं। सुग्रीव-बालि, कर्ण-अर्जुन, कौरव-पांडव, सुन्द-उपसुन्द भाई-भाई ही तो थे। उग्रसेन-कस, श्रेणिक-कोणिक, हिरण्यकश्यप-प्रहाद, शाहजहा-औरंगजेब पिता पुत्र ही तो थे। राजा प्रदेशी और सूरिकता पति-पत्नी ही तो थे। व्यवहार में परिवार परिवार दीखता है किन्तु निश्चय में कोई किसी का नहीं है। आप हमेशा चिंतन करते रहिये—

सब अलग अलग, सब अलग अलग।

सब अलग-अलग की भावना को दोहराने के साथ-साथ स्वयं को दूसरों से और दूसरों को स्वयं से अलग होने की स्थिति में देखने और अनुभव करने का अभ्यास भी करना आवश्यक है। इस सिद्धांत को अपने जीवन की सत्य घटनाओं में घटित हुए रूप में देखिये। सोचिये कि अमुक-अमुक व्यक्ति मेरे सबधी है। मैंने उनके साथ अनेक बार अलग-अलग होने का व्यवहार किया है। मैंने उनका 'अपना' होकर कभी उनको सहयोग नहीं दिया। हम निश्चय दृष्टि से तो अलग-अलग ही हैं किन्तु व्यवहार में भी अलग-अलग हैं। इस प्रकार की सत्य घटनाओं के चिंतन से ममत्व तोड़ने की साधना में सफलता मिलेगी।

दूसरी विचार-धारा—कर्म-फल-भोग-दृष्टि से सब प्राणी अलग-अलग है। सब अपने-अपने कर्मों का फल स्वयं ही अलग-अलग भोगते हैं। हमारे कष्ट के समय दूसरे प्राणी—माता, पिता, बहन, भाई, पुत्र, पुत्री, पत्नी—सब



अपना लेना ले लेता है। यदि द्वेष से या दुख देकर लेना बाकी है तो वह चोरी करके, डाका डालकर, या व्यापार में धोखा देकर या रिश्तों से अपना लेना ले लेता है और जिससे लेता है उसे दुखी भी बना देता है। इसी प्रकार देने वाला भैसा या बैल बनकर या नौकर बनकर भी अपना देना चुकाता है। यह लेना देना कर्मोदय के अनुसार सुख या दुख के रूप में लेना-देना पड़ता है। यह छूटता नहीं है। इस लेन-देन में समता रखने वाला कर्मों की निर्जरा कर लेता है और राग-द्वेष और आर्तध्यान, रौद्रध्यान करने वाला नवीन कर्मों का बंधन कर लेता है।

जैसा लेना वैसा योग।

वैसा बंधन वैसा भोग।

चित्त का सूत्र—परिवार में कर्ज चुकाया जाता है। वहाँ कोई किसी का 'अपना' नहीं है। सब अलग-अलग है।

आत्मोन्नति चाहने वाले प्राणी को निश्चय के साथ-साथ व्यवहार दृष्टि पर भी ध्यान देना चाहिये।

निश्चय दृष्टि चित्त धरी, पाले जे व्यवहार।

पुण्यवत ते पामशे, भव सागर नो पार।

निश्चय दृष्टि से कोई किसी का अपना नहीं है। सब प्राणी अलग-अलग है किन्तु व्यवहार दृष्टि कहती है कि जब तक हम गृहस्थ हैं, परिवार में साथ-साथ रहते हैं, तब तक एक दूसरे के हित में निमित्त बनना हमारा कर्तव्य है। यह व्यवहार है, यह नीति है और यह आत्म-धर्म भी है। परिवार में साथ-साथ रह कर भी ममत्व-शून्यता का बहाना करके अपने परिवार वालों की उचित सेवा नहीं करना, उनको सम्यक् सहयोग नहीं देना, उन्हें निराश करना, धोखा देना, हिंसा, पाप है।

ममत्व-शून्यता का यह अर्थ नहीं है कि हम परिवार में रहकर परिवार की सेवा नहीं करें। परिवार पर मोह नहीं रख कर सबको आत्मा, मात्र आत्मा मान कर उनकी आवश्यक उचित सेवा करना प्रत्येक गृहस्थ का धर्म है और गृह त्याग के बाद सारे समाज और प्राणी मात्र की आत्म-सेवा करना प्रत्येक त्यागी सत महात्मा का कर्तव्य है। तीर्थंकरों ने भी समाज की आत्म-सेवा हित साधु, साध्वी, श्रावक श्राविका—इन चार तीर्थों की स्थापना की है और उन्हें दिव्य आत्मोपदेश देकर अपने कर्तव्य का पालन किया है।

दूसरों की सेवा करने वाला व्यवहार में तो दूसरों की सेवा करता हुआ दीखता है किन्तु निश्चय दृष्टि में तो वह दूसरों की सेवा नहीं किन्तु

स्वयं की ही सेवा कर रहा है। अपने लिये ही अच्छी करणी कर रहा है। उसका अच्छा फल उसे ही मिलेगा। किसी को 'अपना' मत समझो किन्तु आत्मा समझकर उसकी सम्यक् सेवा करो।

साधना का तरीका—साधनाएँ अनेक प्रकार की होती हैं और अनेक प्रकार से की जाती हैं। किन्तु इसमें मूल रूप में दो ही बातें हैं। प्रथम है—चित्त की अधिक से अधिक एकाग्रता और दूसरी है—साधना में अल्प से अधिक समय लगाना। चित्त की एकाग्रता बनती है कुछ दिनों का अभ्यास करने से, प्रतिदिन नियमित समय पर साधना करने से, एक ही स्थान में शांत वातावरण में बैठकर चिंतन करने से। कमजोर या दीर्घ पुरुष लेट कर भी चिंतन-मनन और ध्यान कर सकता है। समय की दृष्टि से सभी समय इस कार्य के लिये उपयुक्त हैं किन्तु रात्रि को सोते समय और प्रातः उठते ही उषाकाल में चित्त अधिक शांत रहता है अतः ये दोनों समय अधिक उपयुक्त हैं।

कुछ लोग आधी रात का समय भी उपयुक्त बताते हैं। कुछ साधक दिन रात्रि का सधि-काल अर्थात् सूर्यास्त और सूर्योदय को साधना करने का अच्छा समय बताते हैं। किन्तु ममत्व शून्यता की स्थिति प्राप्त करने के लिये नियमित समय के अलावा दूसरा समय भी इस कार्य में लगाना आवश्यक है। अतः इस चिंतन के लिये तो सभी समय उपयुक्त हैं। चिंतन-मनन, ध्यान, जप चौबीसो घंटे चलते रहना चाहिये। चिंतन घर में, दुकान में, बिस्तर पर लेटे समय भी किया जा सकता है।

कहा जाता है—“सौ बार दोहराने से ज्ञान आता है। हजार बार दोहराने से वह स्थिर होता है। हजार गुणा हजार अर्थात् दस लाख बार दोहराने से वह जन्म-जन्मांतर के लिये स्थायी बन जाता है।” जितना अधिक चिंतन-मनन होगा उतनी ही शीघ्र सफलता मिलेगी। बार-बार दोहराने से वह अचेतन मन में उतर कर स्थायी भाव बन कर आचर्य बन आग बन सकेगा।

### 3. शत्रुत्व—

किसी प्राणी को अपना शत्रु समझना भूल है। कोई भी प्राणी आपकी कर्मों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। आपके अशुभ कर्मों के बिना कोई अन्य प्राणी आपके दुःख में निमित्त नहीं बन सकता। आपको यदि दुःख मिल रहा है तो वह आपके स्वयंकृत अशुभ कर्मों का फल है। दूसरा प्राणी तो मात्र निमित्त बन सकता है, उसे शत्रु मानना भूल है।

अशुभ कर्मोदय से एक प्राणी पत्थर के ऊपर गिर जाता है, उसका पैर टूट जाता है। वह किसे शत्रु माने ? कैंसर होने से किस पर क्रोध किया जावे ? व्यापार में धन चला जावे या आग में सारी सम्पत्ति जल जावे तो किसे शत्रु माना जावे ? वास्तव में कोई किसी का शत्रु नहीं है। यह तो स्वयंकृत अशुभ कर्मों का दण्ड है जिसके फल-भोग से तीर्थकर भी नहीं बच पाते।

भगवान महावीर ने अपने कानों में कील ठोकने वाले को शत्रु नहीं माना। मुनि गजसुकुमाल ने सोमिल को उपकारी माना। व्यवहार से शत्रु देखने वाले पर हमें क्षमा भाव रखना चाहिये। कहा जाता है "66 क्रोड मास खमण के तप से भी क्षमा बड़ी है।" किसी ने कहा है—“क्षमा मर्त्यलोक से मोक्ष जाने का पुल है।”

शत्रुत्व का, द्वेष भावना का क्षय करने के लिये कुछ महीनों तक मुनि गजसुकुमाल, मुनि स्कन्दक, मुनि अर्जुनमाली आदि की अद्भुत क्षमा एव समता का गुण-गान और ध्यान कीजिये। इससे आपको अपूर्व शांति मिलेगी और आप स्वयं किसी दिन मुनि गजसुकुमाल बन सकेंगे। बार-बार चितन-मनन कीजिये—

शत्रु नहीं कोई शत्रु नहीं है।

शत्रु नहीं है, शत्रु नहीं है।।

#### 4 मुनि गजसुकुमाल का चितन

मुनि गजसुकुमाल अपने बड़े भाई महाराज श्रीकृष्ण के साथ हाथी पर बैठकर भगवान नेमिनाथ के दर्शन करने गये। राह में सोमिल ब्राह्मण की पुत्री, अद्वितीय सुन्दरी, रमणिरत्न सोमा को देखकर, गजसुकुमाल के सर्वथा योग्य समझकर महाराज श्रीकृष्ण ने उसे सोमिल की स्वीकृति से कुआरे अन्त पुर में भिजवा दिया, किन्तु कर्मों का विधान कुछ और ही था। गजसुकुमाल दीक्षित होकर श्मशान भूमि में जाकर ध्यानस्थ खड़े हो गये। सोमिल ने जब उन्हें इस साधु स्थिति में देखा तो पूर्व जन्म के वैर के कारण, बदला लेने के लिए क्रोध में आकर उसने मुनि गजसुकुमाल के सिर पर गीली मिट्टी की पाल बनाकर उनके सिर पर जलते अगारे रख दिये। मुनि गजसुकुमाल का सिर जलने लगा। उनके शरीर में अथाह वेदना होने लगी, किन्तु वे शांत भाव से ध्यान में स्थिर होकर चितन करने लगे। उन्होंने कुछ-कुछ इस प्रकार का चितन किया होगा—

सोमिल मेरा शत्रु नहीं है। ससार में कोई किसी का शत्रु नहीं होता।



“सोमिल मेरा शत्रु नहीं, सहायक है, उपकारी है। वह आज मेरी कर्म निर्जरा में सहायक बना है। आज नहीं तो कभी-न-कभी तो इस कार्य के फल को मुझे भोगना ही पड़ता। यह अच्छा हुआ कि आज मेरी सदबुद्धि की अवस्था में, समता भावना की स्थिति में, इस कर्म-फल को समता भाव से भोगने का शुभ अवसर सोमिल ने मुझे दिया है। मैं उसका कृतज्ञ हूँ। आज मेरे कर्म-रोग की चिकित्सा हो रही है। कर्मों की निर्जरा हो रही है, आत्मा की शुद्धि हो रही है और सभवतः मोक्ष की प्राप्ति भी हो सकती है। सोमिल ने मेरा अहित नहीं किया है, मेरा हित ही किया है। अहित तो उसने अपना ही किया है। उसने मेरे निमित्त से भारी कर्मों का बंध किया है, जिसका दंड भोगना उसके लिए बहुत कठिन होगा। परमात्मा उसे सदबुद्धि दे, सुमति दे, सम्यक् ज्ञान दे और इस कर्म के फल को समता पूर्वक भोगने की शक्ति दे।”

कुछ लोग अपने दुःख में निमित्त बनने वाले को अपना शत्रु मानकर उससे बदला लेते हैं और कुछ लोग उसे क्षमा भी कर देते हैं किन्तु क्या कोई किसी को क्षमा प्रदान कर सकता है? क्या पीड़ित के द्वारा क्षमा प्रदान किये जाने से पीड़क उस पाप के फल-भोग से छूट जाता है? यदि ऐसा होता हो तो मैं एक बार नहीं, किन्तु हजार बार सोमिल को क्षमा प्रदान करता हूँ। मेरी ओर से वह पाप और पाप के दंड से मुक्त बने।

अपराधी सोमिल नहीं है। अपराधी तो मैं हूँ। मैंने पूर्व में भी पाप किया और निमित्त बनकर सोमिल के विचारों को विकृत एवं दूषित बनाकर उसमें बदला लेने की भावना उत्पन्न की और आज भी उसके लिए नवीन भयकर कर्म बंध का निमित्त बना। क्षमा मुझे माँगनी चाहिए। वह तो आज मेरा उपकारी बना है। कर्म निर्जरा में सहायक बना है। मित्र सोमिल ! मेरे अपराध के लिए मैं क्षमा की भीख माँगता हूँ।

मेरे सिर पर जो रखे गये हैं वे अगारे नहीं हैं। वे तो मेरे कर्म रोग काटने की गोलियाँ हैं। मेरे रोग को मिटाने की अचूक दवा है। मुझे इस दवा को समतापूर्वक पीना है। दवा तो दवा ही होती है। वह कभी मीठी और कभी केंडवी भी हो सकती है। ज्ञानी ऐसी दवा को ही कर्म-रोग काटने की दवा मानते हैं। उसका आनन्दपूर्वक सेवन करते हैं। वे चिकित्सक को शत्रु नहीं किन्तु अपना मित्र और एव उपकारी मानते हैं। आज मैं इस दवा को पीकर रोग मुक्त बन सकूँगा। यह अमृत है, इसे पीकर अमर बन सकूँगा।

भगवान् नेमिनाथ ने मुझ पर असीम कृपा की है। उन्होंने मुझे मेरे





इन भौतिक आँखों से देखा नहीं जा सकता। कान, नाक, जीभ और त्वचा से मैं जाना नहीं जा सकता। इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में मुझे नहीं जान सकने के कारण लोग सरलता से मेरे अस्तित्व का ज्ञान नहीं कर पाते। मेरे अस्तित्व में लोगो को शीघ्र ही श्रद्धा भी नहीं हो पाती।

मैं शरीर नहीं हूँ। मैं न स्त्री हूँ, न पुरुष हूँ। न बाल हूँ, न वृद्ध हूँ। न जैन हूँ, न अजैन हूँ। न शैव हूँ, न वैष्णव हूँ। न हिन्दू हूँ, न मुसलमान हूँ। न छूत हूँ, न अछूत हूँ। न बडा हूँ, न छोटा हूँ। न बुद्धिमान हूँ, न मुर्ख हूँ। न अच्छा हूँ, न बुरा हूँ। मैं तो मात्र आत्मा हूँ। आत्मा के सिवाय और कुछ भी नहीं हूँ।

मैं चेतन हूँ—मेरे अस्तित्व का ज्ञान मेरी चैतन्यता के माध्यम से ही पाया जा सकता है। यह शरीर चेतना के सहारे ही खाता-पिता है, चलता-फिरता है, सुनता-बोलता है और देखता-जानता है। मेरे द्वारा इस शरीर को छोड़ दिये जाने के बाद यह शरीर कुछ भी नहीं कर सकता, बेकार हो जाता है, मिट्टी बन जाता है। लोग इसे क्षण भर भी घर में नहीं रखते। घर से बाहर श्मशान में ले जाकर इसे जलाकर इसकी भस्म बना देते हैं। मेरे अस्तित्व का सबसे प्रबल प्रमाण मेरी चेतना है, जो इस शरीर को चलायमान रखती है और जिसके निकल जाने पर जड़ देह जलाने योग्य बन जाती है।

मैं अवद्य हूँ—शस्त्रों द्वारा मेरा छेदन, भेदन या वध नहीं हो सकता। आग मुझे जला नहीं सकती। पानी मुझे गला नहीं सकता। हवा सुखा नहीं सकती। मैं अजर-अमर हूँ, मैं शाश्वत हूँ।

मैं ज्योति पुज हूँ, मैं ज्योति हूँ, अद्भुत ज्योति हूँ। ससार की सभी ज्योतियों से भिन्न हूँ। अतः मेरी कल्पना करना भी कठिन है।

मैं ज्ञान रूप हूँ—मैं (आत्मा) ज्ञानरूप हूँ, ज्ञान का भंडार हूँ। ज्ञान की न्यूनाधिकता का कारण मेरे ऊपर आया हुआ ज्ञानावरणीय कर्म का आवरण है, उसके हटते ही मैं सर्वज्ञ, सर्वदर्शी बन जाता हूँ।

मैं आनन्द घन हूँ—मैं आनन्दमय हूँ। बाहरी मूर्त पदार्थों में सुख नहीं है, वहाँ तो सुखाभास है जिसका परिणाम कभी-न-कभी दुःख की प्राप्ति में मिलता है। मैं (आत्मा) स्वयं में स्थिर होकर स्वयं के द्वारा स्वयं की अनुभूति से, अकथनीय आनन्द पा सकता हूँ। वहाँ चिन्ता, भय, दुःख का नाम निशान भी नहीं है। आनन्द के लिए बाहर झाँकने की जरूरत नहीं है।

मैं निराकार हूँ—मेरा कोई आकार नहीं है। शरीर अवस्था में मैं शरीर

प्रमाण बड़ा या छोटा हो जाता हूँ।

मैं निर्विकार हूँ—शुद्ध रूप में मैं काम, क्रोध, मान, माया, लोभ न  
मोह इन सबसे रहित हूँ।

मैं विमल ज्योति हूँ—मैं निर्मल ज्योति हूँ, मैं शुद्ध चेतना हूँ। मैं  
हूँ। आत्मा के सिवाय मैं—और कुछ भी नहीं हूँ। आत्मा का आत्मा के सिवाय  
कुछ भी नहीं होता। मेरे सिवाय मेरा यहाँ कुछ भी नहीं है। मेरे दाढ़त न  
कहा नहीं जा सकता। मुझे इन चर्म चक्षुओं से देखा नहीं जा सकता। मेरे  
न कोई रूप है, न कोई रेखा है।

“आत्म-ज्ञान ही परम ज्ञान है, स्वानुभूति सम्यक् दर्शन है। आत्म-रम्य  
सयम है, तप है, आत्म-ध्यान ही परम धर्म है।” आत्म दर्शन के उपाय—आत्म  
अमूर्त है। उसे इन चर्म चक्षुओं से देखा नहीं जा सकता। उसकी अनुभूति  
और उसके साक्षात्कार के लिये आध्यात्मिक ग्रंथों के अध्ययन एवं सं  
महात्माओं के मुखारविन्द से ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ नीचे लिखी  
विधि से ध्यान भी किया जा सकता है—

प्रथम चितन—शरीर की प्रत्येक क्रिया आत्मा की चैतन्य शक्ति के  
कारण ही संभव है। जैसे दूध में घी मिला हुआ है वैसे ही शरीर के  
कण-कण में आत्मा समा हुआ है। इसका गहरा और बार-बार चितन किया  
जावे।

दूसरा चितन—शरीर से भिन्न किन्तु शरीर में ही आत्मा की स्थिति की  
कल्पना करना, कल्पना द्वारा ध्यान करना, ध्यान द्वारा आत्मा की अनुभूति  
करना और उसका दर्शन करना चाहिये। यह काम आसान तो नहीं है  
किन्तु अभ्यास करने से सफलता मिलेगी।

तीसरा उपाय—अपने शरीर से आत्म-प्रदेशों को ऊपर उठाने की  
कल्पना की जावे और इस साधना में ध्यान द्वारा आत्म-दर्शन का अभ्यास  
किया जावे।

चौथा उपाय—अपनी आत्मा को लोक के अग्र भाग में पुरुषाकार में  
सिद्ध स्वरूप में, अटल अवगाहना में देखने का ध्यान किया जावे।

पाँचवा उपाय—अपने आत्मा को शरीर से ऊपर उठाकर निरालं  
शरीर का दाह-सस्कार देखा जावे। इससे देह की आसक्ति हटती।

छठा—सिद्धों का अटल अवगाहना की स्थिति में ध्यान किया जावे।  
सातवां—दूसरे प्राणियों के शरीर में आत्मा की स्थिति की कल्पना की  
जावे।

आठवा—मुनि गजसुकुमाल, मुनि स्कदक आदि के जीवन के अंतिम समय में उनके शरीर से निकलकर ऊपर उठते हुए आत्मा का कल्पना द्वारा ध्यान किया जावे।

आत्म-भावना या आत्म ध्यान से केवलज्ञान की प्राप्ति भी संभव हो सकती है।

## 6 समता आचरण

समता आचरण का अर्थ है कि मनुष्य दुःखद और सुखद दोनों प्रकार की परिस्थितियों में अशुभ विचार और अशुभ काम नहीं करे। वह कुविचारों और कुकर्मों से दूर रहे। वह अच्छे विचारों और अच्छे कामों में ही लगा रहे। वह ऐसे विचार और ऐसे काम करे जिससे उसका अपना भला होवे और दूसरों का भी अहित नहीं होकर आत्म-हित होवे। समता आचरण समता विचारों से ही बना है। समता भावना के बिना समता आचरण नहीं बनता।

समता आचरण के लिये चार बातों से बचना आवश्यक है। 1 दुःख चेतना से बचना, 2 दुःख चेतना में अशुभ सकल्प-विकल्प से बचना, 3 सुख चेतना से बचना और 4 सुख चेतना में अशुभ सकल्प-विकल्प से बचना।

दुःख चेतना का अर्थ है—दुःखद परिस्थिति में दुःखी होना, व्याकुल होना, दुःख की अनुभूति करना। दुःख-चेतना से बचने का अर्थ है कि बाहर चाहे दुःखद स्थिति बन जावे किन्तु प्राणी के भीतर मन में दुःख नहीं आवे। वह आर्तध्यान नहीं करे, उसकी शांति भंग नहीं हो। मन में चिंता, भय, शोक, उदासी नहीं आने पावे।

मन में दुःख की चेतना आने पर प्राणी अनेक प्रकार के अशुभ विचारों में उलझ जाता है। वह अनेक प्रकार के अशुभ सकल्प-विकल्प करता है—यह काम करूँ ? वह काम करूँ ? क्या करूँ ? क्या नहीं करूँ ? दुःख से कैसे बचूँ ? ऐसे विकल्पों से बहुत से बुरे काम भी हो जाते हैं। जो प्राणी दुःख चेतना से बचेगा, उसके विचार और उसका आचरण समता विचार और समता आचरण बने रहेंगे।

मुनि अर्जुनमाली का साधु जीवन पूर्ण समता आचरण का सर्वोत्तम उदाहरण है। दीक्षा लेने के बाद जब वे गोचरी जाते तब कुछ लोग उन्हें गालियाँ देते। कोई उन्हें पीट भी देता। कहीं अन्न मिलता तो जल नहीं मिलता। कहीं जल मिलता तो अन्न नहीं मिलता।

मुनि अर्जुनमाली चिन्तन करते—मैंने पूर्व जन्मों में और इस जन्म में लोगों को अन्तराय दी है। उस अन्तराय कर्म का फल मुझे अन्न-जल के



मे दुख की अनुभूति ही नहीं होती होगी। वे दुख-चेतना-मुक्त समता-आचरण के साक्षात् मूर्त रूप हैं।

भौतिक-सुख-चेतना भी प्राणी को समता विचार और समता आचरण से बहुत दूर ले जाती है। भौतिक-सुख-चेतना वाले प्राणी का अर्थ है—विषय-भोगों में मस्त, इन्द्रिय-सुखों में डूबा हुआ, सासारिक-सुखों में आसक्त, मास-मदिरा-कुशील-सेवन में लिप्त, सुख प्राप्ति हेतु आर्त-रौद्र-ध्यान करता हुआ और अनेक प्रकार के बुरे सकल्प-विकल्प करता हुआ, दूसरों के हित-अहित का ध्यान नहीं करने वाला, समता विचार और समता आचरण से शून्य प्राणी। जो मनुष्य भौतिक-सुख-चेतना में डूबा हुआ है और सासारिक सुख-भोगों की इच्छा करता रहता है वह समता से बहुत दूर चला जाता है। समता आचरण के लिये आवश्यक है भौतिक-सुख-चेतना से मुक्ति और इन विषय-भोगों के सकल्पों-विकल्पों से भी मुक्ति, इन सभी बातों से उदासीनता।

कुछ अपवादों को छोड़कर प्राणी के अधिकांश अशुभ विचार और अशुभ काम प्रायः किसी-न-किसी प्रकार की अशुभ या अशुद्ध सुख-चेतना से ही होते हैं। आत्म-हत्या करने वाला भी शायद अपनी आत्म-हत्या से दूसरों को दुखी बना कर स्वयं सुख पाने की कल्पना करता होगा। युद्ध में लड़ते हुए मरने वालों को अपनी वीरता दिखाने और वीर कहलाने के विचारों से उनके मन में सुख की अनुभूति होती होगी। कठोर अग्नितापस भी स्वयं को भयकर ताप देकर महान तपस्वी कहलाने की भावना से या स्वर्ग-सुख पाने की आशा से सुख अनुभव करते होंगे। सुख की अनुभूति शरीर से कम और मन से अधिक होती है। यही कारण है कि लोग प्रायः मानसिक सुखानुभूति के लिये बड़े-बड़े कष्ट और खतरे उठाने के लिये तैयार हो जाते हैं।

सुख बाहरी पदार्थों में नहीं है। वह तो मन के भीतर विचारों से मिलता है। शत्रु के मुँह से गाली सुनने से क्रोध आता है किन्तु ससुराल में महिलाओं के मुँह से गीतों में गाली सुनने से क्रोध नहीं आता, क्रोध की जगह प्रसन्नता होती है। जिन कामों से एक समय में लोगों को सुख होता है उन्हीं कामों से दूसरे समय में उन्हीं लोगों को दुख होता है।

मनोविज्ञान कहता है कि प्राणी यदि विषय-सुख-भोगों से होने वाले भावी दुखों का चिन्तन करे, भौतिक सुखों को सुखाभास मानने लगे, उनसे अन्त में दुख पाने वाले यादवों और कौरवों के ऐतिहासिक उदाहरणों का



हानि, आत्म-पतन, कुव्यसन, कुसगति, सकट, इस जन्म मे दु ख और अगले जन्म मे दुर्गति।”

अन्य प्रकार की साधना के साथ-साथ उपर्युक्त सूत्रो को दोहराइये, मन की एकाग्रता से जप कीजिये। जप से पैदा होने वाली ध्वनि तरंगो की अजीब और अदृश्य शक्ति किसी भी गुण को स्थायी भाव बना कर प्राणी के आचरण मे उतारने मे समर्थ है। शुभ भावना से किया गया जप स्वाध्याय तप का अंग है।

## 7. राग-द्वेष

किसी प्राणी को अपना मानना या उसे अकारण ही बडा या अच्छा या धनवान आदि समझना राग है और किसी को शत्रु मानना या अकारण ही गरीब भिखारी आदि समझना द्वेष है। सदभावना से किसी को अनिष्ट एव पतन से बचाने के लिए आवश्यक कारणवश वस्तुस्थिति का निष्पक्ष भाव से अपनी जानकारी के अनुसार कथन करना राग द्वेष नही होता किन्तु अकारण किसी के सबध मे उसके अच्छा या बुरा होने का कथन करना राग द्वेष ही है।

प्राणी के बुद्धिमान या मूर्ख, बडा या छोटा, रक या राव, भला या बुरा, सज्जन या दुर्जन, अपना या पराया, मित्र या शत्रु होने का विचार करना पर-द्रव्य का चितन है और राग-द्वेष है। प्राणी को मात्र प्राणी समझना, उसको मूलरूप मे विशुद्ध आत्मा के रूप मे देखना, उसे मात्र आत्मा मानना, वीतराग भाव है।

दु ख मे दु खी होना या सुख मे फूलना राग-द्वेष है किन्तु दु ख मे समता रखना, उसे समभाव से भोग लेना और सुख मे आसक्त नही होना, उदासीन रहना, उससे होने वाले भावी दु खो पर विचार शुरू कर देना राग-द्वेष-मुक्ति है।

## 8 कर्म बंध और क्षय

कर्म है प्राणी के द्वारा किये गये पुरुषार्थ के बदले मे उसे मिलने वाला फल जिसे लोग दैव भाग्य या होनहार भी कहते है। ससार मे एक प्रकार के अति सूक्ष्म कर्म-वर्गणा के पुद्गल भरे हुए है। जब-जब प्राणी के मन या वचन या काया या तीनो योगो से जरा भी हलन-चलन होती है तो ये पुद्गल प्राणी की ओर आकर्षित होते है, मन के अच्छे या बुरे विचारो के अनुसार अच्छे या बुरे सस्कार बनकर कर्म के रूप मे आत्मा के साथ जुड





के बराबर फल होता है, ऐसा केवलज्ञानी मुनि विमल ने हमें बताया है। आप दोनो विवाहित होकर भी अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं। धन्य है आप, धन्य है आपका अखण्ड ब्रह्मचर्य, धन्य है आप दोनो का जीवन।” विजय सेठ और विजया सेठानी की विनयपूर्वक स्तुति और भक्ति करते हुए, शील के महात्म्य को बताते हुए, दूर चम्पा नगरी से आये हुए, बारह व्रतधारी श्रावक श्रेष्ठी जिनदास ने सबके सामने रहस्योद्घाटन किया। इस रहस्य को और शील की महिमा की बात सुनकर वहाँ बहुत लोग एकत्रित हो गये। विजय सेठ के माता-पिता तो पौत्र देखने की आशा वर्षों से लगाये हुए थे। उन्हें क्या पता था कि उनके पुत्र ने शुक्ल पक्ष में अखण्ड शील पालन का और उनकी पुत्रवधू ने कृष्ण पक्ष में शील पालन का व्रत विवाह के पूर्व ही ले लिया था।

अखण्ड शील की बात प्रकट होने पर विजय सेठ और विजया सेठानी अपने पूर्व निश्चय के अनुसार दीक्षा लेकर मुनि विजय और साध्वी विजया बन गये और अपने कर्मों को क्षय करके उन्होंने परमात्म-पद प्राप्त कर लिया।

दोनों तरुण थे, सुन्दर थे, विवाहित थे, पति-पत्नी थे, रात्रि में एक कमरे में एक ही पलंग पर सोते थे। आध्यात्मिक वार्तालाप भी करते थे किन्तु काम-वासना उन्हें छू भी नहीं सकी। ऐसे दम्पति की भक्ति से चौरासी हजार मुनियों की भक्ति का लाभ हो तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ? मुनि विजय और साध्वी विजया ने अपने आजीवन अखण्ड शील-पालन और सयम से मोक्ष प्राप्त किया।

1 विजय सेठ और विजया सेठानी के शील-पालन की अद्भुत घटना और इसके महात्म्य की बात सुनने से प्राणी के मन में शील-पालन की शुद्ध भावना का जन्म होता है।

2 इस घटना का गुणगान और अनुमोदन करने से उत्पन्न होने वाली भाव-तरंगों से उस शील-भावना का पोषण और उसकी वृद्धि होती है।

3 अपनी भौतिक आँखें बंद करके कल्पना द्वारा उस घटना की काल्पनिक चित्रावली का ध्यान करने से प्राणी का मन शील-भावना पर एकाग्र हो जाता है। मन में इतनी शक्ति नहीं है कि वह आँखों को या कान को छोड़कर दूसरी जगह चला जावे।

4 शीलव्रत के महात्म्य का जप करने से मौन जप से उत्पन्न होने वाली आंतरिक ध्वनि-तरंगों शील-भावना को मजबूत बनाती है।



मे बह सकता है, उसे कीड़े खा सकता है। चोरी, ठगी या धोखा भी हो सकता है।

यदि प्राणी के अन्तराय कर्म या अशुभ कर्म का उदय है तो उसे किसी भी पुरुषार्थ से धन और सुख मिलने वाला नहीं है। यदि शुभ कर्म का उदय है तो वर्तमान में किसी भी पुरुषार्थ के नहीं बनने पर भी केवल पूर्व-कृत शुभ पुरुषार्थ से संचित पुण्य के उदय से धन और सुख की वर्षा भी हो सकती है। शालिभद्रजी के साथ ऐसा ही हुआ। सेठ सुदर्शन ने सूली से रक्षा के लिये कुछ भी नहीं किया, किन्तु देवो ने सूली का सिंहासन बना दिया। भगवान् पार्श्वनाथ की रक्षा भी केवल निमित्तो द्वारा हुई। प्रह्लाद की अग्नि से रक्षा हुई।

कभी-कभी वर्तमान काल के पुरुषार्थ के बिना और किसी भी सहायक निमित्त के बिना भी प्राणी के किसी पूर्व-संचित पुण्य से उसका काम बन जाता है, उसकी रक्षा हो जाती है। जैसे गोशालक की तेजोलेश्या से भगवान् महावीर की रक्षा हुई। अर्जुनमाली के मुद्गर से सेठ सुदर्शन की रक्षा हुई। बेहोशी की दशा में नदी में बहाये गये भीम की सर्प-दशो द्वारा मृत्यु न होकर रक्षा होना पूर्व-संचित पुण्य का ही तो फल है।

यह केवल भ्रम है कि वर्तमान अशुभ खोटे धधो से अधिक धन और सुख मिलता है। शुभ कर्म के उदय में साधारण शुभ पुरुषार्थ से ही धन और सुख मिल सकता है। खोटे धधो से आने वाला धन समय आने पर दुःख का ही कारण बनेगा।

जिस महान् पुण्योदय से आपको मानव देह मिली है, अच्छा कुल, अच्छा धर्म, त्यागी धर्म-गुरु और प्रायः सभी साधन मिले हैं उसी पुण्य से आपका जीवन-निर्वाह हो सकेगा—इस बात पर पूर्ण श्रद्धा रखते हुए, नीति-मार्ग पर चलते हुए, विचारों में समता और आचरण में समता रखते हुए, मानव-जीवन के मूल लक्ष्य, परमात्म-पद की प्राप्ति की ओर आगे बढ़िये।

## 12 अमृत-बिन्दु

यह विचार कि मैं किसी प्राणी की या समाज की सेवा कर रहा हूँ—शायद हृदय के किसी कोने में छिपे हुए अहंकार ने भेजा है और यह विचार कि मैं दूसरों के परिश्रम और कृपा से ही बना हूँ, मुझे उनकी सेवा द्वारा उनके ऋण से मुक्त बनना चाहिये—विनय के आगमन की सूचना है।



अवगुणो को छोड़ने के लिए दूसरा उपाय है—दीर्घ अभ्यास। अभ्यास का अर्थ है—जीवन में घटने वाली घटनाओं में उन सिद्धांतों को लागू करना। जैसे क्रोध जीतने का अभ्यास करने वाला किसी घटना पर जो उसे बुरी लगे उस पर क्रोध नहीं करे और यह विचार करे—“यह कष्ट तो मेरे पूर्वकृत कर्मों का ही फल है। इस पर समता रखने से ही मेरा यह कर्म नष्ट होगा। यह दुःख तो मेरे कर्मरोग की दवा है, चिकित्सा है। इस दवा को समतापूर्वक पीना है। अपने मन को इन विचारों में या अन्य विचारों में लगाता हुआ क्रोध से बचने का उपाय करे। प्रत्येक क्रोध पैदा करने वाली घटना के समय समता रखने का अभ्यास करे। दीर्घकाल के अभ्यास से क्रोध पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

आजकल मानिसक तनाव को दूर करने एवं जीवन के अंतिम लक्ष्य निर्विकार दशा एवं परमानंद की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार की साधना एवं ध्यान किये जाते हैं, जैसे एक बिंदु या पदार्थ पर दृष्टि जमाकर त्राटक ध्यान द्वारा मनोविजय पाना। विपश्यान ध्यान, नासाग्र पर दृष्टि जमाना, श्वास या शरीर-तंत्र-प्रेक्षा, शरीर के किसी शक्ति-केन्द्र को जागृत करना। ये सब प्रयास मन को वश में करने के लिए किये जाते हैं। ये केवल साधन हैं—मन को वश में करने के।

हमारे जीवन का लक्ष्य है—कषाय-मुक्त होना, जिसमें प्रथम स्थान है क्रोध का। क्रोध एक ऐसा दुर्गुण है जो बड़े-बड़े तपस्वियों और साधकों को भी आसानी से नहीं छोड़ता। अतः अपना समय अन्य साधनों की बजाय सीधा क्रोध की निवृत्ति की साधना में लगाना ज्यादा उपादेय रहेगा। दूसरों के द्वारा दिये गये कष्ट को दुःख नहीं मानकर कर्म काटने की औषधि मानने की साधना से क्रोध निवृत्ति और समता की प्राप्ति हो सकेगी।

जब हम कष्ट में समता रखकर उसे दवा मान ले और निमित्त बनने वाले को परम उपकारी, अपना हितैषी और क्रोध रोग काटने की दवा देने वाला चिकित्सक मान ले और 24 घंटे इसका चिंतन-मनन-स्मरण करे, इसे क्षण भर भी नहीं भूले, तो क्या हमारा क्रोध समाप्त नहीं होगा ?

### क्रोध निवृत्ति की साधना

जैनागमों में चार प्रकार का क्रोध बताया गया है। प्रथम है अनन्तानुबन्धी क्रोध जो पत्थर की तेड़ के समान है। यह क्रोध की तीव्रतम दशा है, जो जीवन भर नहीं मिटती। इससे नरक गति की प्राप्ति होती है और मनुष्य कभी सुखी नहीं बनता।



पहुँचाने, या आत्म-हत्या करने के कार्य में लग सकता है। ये सभी त्यागने योग्य हैं। हमें सजग रहकर इससे बचना चाहिए।

क्रोध से रोगोत्पत्ति, धन-हानि, मान-हानि एवं अनेक प्रकार के सघर्ष एवं दुःख हो जाते हैं। क्रोध करने वालों ने हमेशा दुःख ही उठाया है। जैसे—कौरव, कर्ण, रावण।

क्रोध निवृत्ति से स्वास्थ्य, धन, मान, सुख एवं परमात्म-पद की प्राप्ति होती है। इसके उदाहरण हैं—मुनि गजसुकुमाल, मुनि-मैतार्य, मुनि उदाई, मुनि अर्जुनमाली, मुनि स्कंदक और वे पाँच सौ नव दीक्षित नव-युवक सत जिन्हें पालक ने घाणी में पिलवा दिया था। इन सतों की मृत्यु घटनाओं की कथा का श्रवण, अध्ययन, इसके समता-भाव का अनुमोदन, इनसे प्रमोद भावना का आना और इन्हें बार-बार भावपूर्वक भाववदन करना क्रोध का नाश करता है। इससे कर्मों की निर्जरा, आत्मा की शुद्धि और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

क्रोध के समय प्राणी उसे दुःख देने वाले व्यक्ति के कामों में दोष ढूँढने, उसके अपराधी होने के प्रमाण पाने, उसे दड देने, धोखा देने, हानि पहुँचाने, नीचा दिखाने और उससे बदला लेने की योजना बनाने आदि में लग जाता है। प्राणी को सजग होकर इन बातों से बचना चाहिए।

क्रोध से बचने के लिए सर्वप्रथम कर्म सिद्धांत का अध्ययन एवं उसमें गहरी श्रद्धा बनाना आवश्यक है। उसे यह समझना एवं मानना चाहिए कि ससार का कोई भी प्राणी निश्चय में किसी दूसरे प्राणी को अर्थात् मुझे सुख या दुःख नहीं दे सकता। मुझे जो दुःख मिल रहा है वह मेरे ही किए हुए दुष्कर्मों का फल है। दूसरा प्राणी तो केवल निमित्त ही बन सकता है। मैं मेरे दुष्कर्मों के उदय से आये हुए इस दुःख या कष्ट से बच नहीं सकता। अतः मुझे पूर्ण समताभाव रखकर इस आये हुए कष्ट को कर्म-रोग के काटने की दवा समझकर समतापूर्वक पी लेना चाहिए। यह मेरे कर्म-रोग की चिकित्सा हो रही है। मेरे अशुभ कर्मों की निर्जरा हो रही है। मेरे आत्मा की शुद्धि हो रही है। और संभव है मुझे मुक्ति की प्राप्ति भी हो जावे।

यह प्राणी जो मेरे इस कष्ट में निमित्त बना है, जो मुझे शत्रु दिख रहा है, वह न तो मेरे लिए बुरा है और न मेरा शत्रु ही है। वह मेरा हितैषी और परम उपकारी है। मेरे कर्म-रोग की चिकित्सा के लिए डॉक्टर बनकर आया है। मुनि गजसुकुमाल, मुनि खदक आदि ऐसा चितन करके क्रोध-निवृत्त हुए और वे ससार भ्रमण से मुक्त बने।



क्रोध दूर करने के कुछ साधारण उपाय भी हैं। जैसे—प्रतिकूल स्थिति के समय उस स्थान से कुछ दूर चले जाना या जल पी लेना या कोई सूखे रोचक पुस्तक या कहानी पढ़ने में लग जाना। मन को किसी भी दूर रोचक कार्य में लगा देने से क्रोध वाली घटना भूली जा सकती है। क्रोध से होने वाली हानि पर विचार किया जावे। क्रोध पर विजय से होने वाला लाभ पर विचार किया जावे। क्रोध से दुःख और क्रोध निवृत्ति से सुख प्राप्त करने वाले लोगों के उदाहरण पर चिंतन मनन किया जावे। ऐसे अनेक उपाय हैं।

अवगुण निवृत्ति की साधना के संबंध में मनोविज्ञान का कहना है कि गलत और बुरे विचारों और संस्कारों को दूर करने के लिए सही और अच्छे विचारों और संस्कारों का बार-बार चिंतन-मनन कीजिए। किसी अच्छे विचार को दस-बीस मिनट तक बार-बार दोहराने से आपके मन में उस विचार की तरंग पैदा होगी और वे बुरे विचारों की तरंगों को तोड़ देगी। इसमें समय लगेगा किन्तु सफलता अवश्य मिलेगी। साधकों का कहना है कि आप जो कुछ दोहराते हैं उस पर यदि आपको प्रारंभ में पूर्ण विश्वास नहीं भी हो तो भी आपका दोहराना और जप करना व्यर्थ नहीं जावेगा। बार-बार दोहराने से वे विचार आपके मन में स्थान बना लेंगे, अवचेतन मन में उतर जावेंगे, स्थायी भाव का रूप ले लेंगे, और आपके जीवन का आचरण बन जावेंगे। कहा जाता है कि दस लाख बार दोहराया हुआ विचार जन्म जन्मान्तर में भी साथ रहता है। अतः आप जो विचार अपनाना चाहते हैं उसे जपिये, बार-बार दोहराइये, पढ़ी या कागज पर लिखिये, कुछ दृढ़ तीव्र गति से जपिये, फिर मंद गति से जपिये, उसके अर्थ पर भी चिंतन कीजिये और उसकी सत्यता पर अनेक दृष्टियों से चिंतन-मनन भी करके उसमें दृढ़ श्रद्धा बनाइये।

दुःख-चेतना-निवृत्ति और क्रोध-निवृत्ति के लिये चिंतन करिये—“दुःख मेरे पाप कर्मों का फल है।” दुःख में समता रखते हुए सोचिये—“दुःख मेरे पाप कर्मों को काटने की दवा है और निमित्त मुझे पाप कर्म काटने की दवा देने वाला डॉक्टर है।”

आप उपर्युक्त सूत्रों को दिन रात में बार-बार दोहराइये, इनको अपने मन पर चिंतन कीजिये। रात्रि के शांत वातावरण में सोते समय दस-बीस मिनट इनको दोहरावे, सबरे उठते ही काफी समय तक इनको दोहरावे। इन उपायों से किसी को पाँच-दस महीनों में और किसी को दस-बार कर्मों से क्रोध से मुक्ति और पूर्ण समता की प्राप्ति हो सकेगी। दिन रात के 24 घण्टों

मे केवल एक घटे ध्यान साधना करना और 23 घटे आर्त-रौद्र ध्यान करना और अवगुणो का अभ्यास करना कुछ-कुछ ऐसा ही लगता है जैसे 24 घटो मे एक रुपया कमाना और 23 रुपये खर्च करना। अत शीघ्र सफलता के लिये एक घटे के नियमित समय के एकावधान के अतिरिक्त जब-जब भी समय मिल सके, तब-तब दिन मे कई बार अपने लक्ष्य का चितन एव स्मरण करते रहना चाहिये। उठते-बैठते, सोते-जागते हर समय अपना लक्ष्य अपनी स्मृति मे रहना चाहिये, तभी सफलता मिलेगी।

ध्यान मे एक ही विषय पर एकावधानता का होना आवश्यक है किन्तु ध्यान के उसी विषय मे विषयांतर होना ध्यान मे बाधक नही, किन्तु साधक है। जैसे क्रोध निवृत्ति के ध्यान मे—क्रोध क्या है ? उसके कितने भेद है ? उसके कारण क्या-क्या हो सकते है ? उसमे प्राणी क्या-क्या विचार करता है और क्या-क्या अनर्थकारी काम करता है ? उससे होने वाली हानि क्या है ? उसकी निवृत्ति से क्या-क्या लाभ होते है ? उनके उदाहरणो पर भी विचार किया जावे। क्रोध निवृत्ति के भिन्न-भिन्न क्या-क्या उपाय है ? उनका ध्यान, चितन-मनन भी आवश्यक, उपादेय और साधना मे साधक है। इसे विषय मे विषायन्तर 'होना कहा जा सकता है किन्तु यह कार्य मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मन की थकान को दूर करने वाला और उसे अधिक सक्रिय बनाने वाला है। इससे विचारो मे पूर्णता एव दृढता आती है। ऐसा ध्यान सहज-ध्यान या सहज-योग कहा जा सकता है।

क्रोध से बचने का साधारण उपाय—क्रोध आने की जहाँ घटना हो रही है, वहाँ से उठ कर दूसरी जगज चले जाना, ठडा पानी पी लेना, कोई कहानी पढने मे लग जाना या किसी दिलचस्पी वाले काम मे लग जाना।

क्रोध पर विजय पाने का दूसरा उपाय—इसके दो सूत्रो का दिन मे कई बार कुछ महीनो तक प्रति दिन जप करना अर्थात् उन्हे दोहराते रहना और उनके अर्थ का चितन करते रहना। वे दो सूत्र ये है—(क) दु ख मे समता रखूंगा यह दु ख कर्म-रोग काटने की दवा है। (ख) दु ख मे निमित्त बनने वाला मुझे कर्म-रोग काटने की दवा देने वाला डॉक्टर है।

क्रोध जीतने का तीसरा उपाय है कि चार प्रकार के अभ्यास किये जावे। प्रथम अभ्यास है—भूतकाल की क्रोध की एक घटना को याद करके उसके लिये पश्चात्ताप किया जावे और कुछ दड प्रायश्चित्त लिया जावे। जैसे दो दिन मिठाई छोडना, नमक छोडना, कुछ दान देना, उपवास या एकत करना। इसके साथ ही कल्पना द्वारा उस घटना मे अपने आचरण

को समतामय बनाने का अभ्यास करना अर्थात् यह सोचना कि यह कष्ट, दुःख या सकट मेरे ही किसी पूर्वकृत पापकर्म का फल था। वह मुझे कभी-न-कभी भोगना ही पड़ता। यह कष्ट मेरे किसी पूर्वकृत पापकर्म काटने आया था। लेकिन मैं समता नहीं रख सका। भविष्य में कोई मुझे कितना ही दुःख देवे, मैं पूर्ण समता रखूंगा। मुनि गजसुकुमालजी ने दुःख को दवा माना और दुःख में निमित्त बनने वाले को कर्म-रोग की दवा देने वाला डॉक्टर माना।

दूसरा अभ्यास—निकट भविष्य में घटने वाली सम्भावित घटनाओं की सूची बनाइये और एक-एक घटना को याद करके कल्पना द्वारा प्रत्येक घटना को अपने किसी पाप का फल मानकर उसमें पूर्ण समता रखने का संकल्प कीजिये।

तीसरा अभ्यास—वर्तमान में होने वाली प्रत्येक घटना में उपर्युक्त दो सूत्रों का तीन-चार बार चिंतन करके अपने आचरण को पूर्ण समतामय रखे। यदि कुछ कमी रह जावे तो उसके लिये पश्चात्ताप कीजिये और दस प्रायश्चित्त भी लीजिये।

चौथा अभ्यास—जिन व्यक्तियों से आपकी थोड़ी भी नाराजगी है उनके नाम ले लेकर उनके पास सबेरे और रात्रि में पाँच-दस मिनट की भावना का और शुभकामना का सदेश भेजिये—“मैं आपका मित्र हूँ। आपका भला चाहता हूँ। आपका भला हो, भला हो, भला हो।” आप इस सदेश को भेजते समय आप अपने मन में कल्पना कीजिये कि यह बात आप उसी कान में कह रहे हैं। सबेरे और रात्रि में भेजा गया यह मोन सदेश, राम है, जादू का सा काम करे और आप दोनों में मित्रता स्थापित हो जाय। प्राणीमात्र के कल्याण की भावना बहुत उत्कट और उद्यतरूप धारण करके तो इससे तीर्थकर नाम कर्म का उपार्जन भी हो सकता है।

साधना के लिए सर्व प्रथम एक दुर्गुण को छोड़ने की साधना प्रारम्भ करना ठीक है। इसका कारण यह है कि मन की सारी शक्ति एक ही बात पर केन्द्रित हो सकेगी। आप उठते बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते, दिन में पचास बार दोहराइये “क्रोध छोड़ना है, इस पुनरावृत्ति से सजगता उत्पन्न जो सफलता की जननी है।

## दुर्भावना-निवृत्ति

मनुष्य की दूसरी बड़ी कमजोरी है—दुर्भावना। हमारे मन में कुछ पदार्थों का सस्कार जम गये हैं कि जब हम अन्य किसी प्राणी का पतन देखते हैं तो

सुनते हैं तो मन में एक प्रकार की विचित्र सतुष्टि की हलकी-सी लहर पैदा हो जाती है मानो मुझे कुछ प्राप्ति हो गयी है। “मैं उस व्यक्ति से कुछ ऊपर उठ गया हूँ। वह मेरे सामने सिर उठाने, बोलने लायक नहीं रहा। उसका यह पतन बुरा होते हुए भी मेरे लिए तो अच्छा ही है। मैंने तो उसका पतन नहीं कराया। मैं तो निर्दोष हूँ। किन्तु मेरे मन लायक बात हो गयी।” कभी-कभी इससे हमें विचित्र सुख जैसा कुछ अनुभव होने लगता है। यह भावना ऊपर से दुष्कर्म नहीं दिखते हुए भी गहराई में भयकर भाव दुष्कर्म है। लोग चाहे इसे दुष्कर्म नहीं मानें, किन्तु यह महान दुष्कर्म है और उस प्राणी के आध्यात्मिक विकास को रोक देता है।

जो अनुभवहीन है उनकी दुर्भावना प्रकट हो जाती है और जो इससे भी नीचे स्तर वाले लोग हैं, वे ऐसी घटनाओं पर अपनी प्रसन्नता को मिटाई बॉटकर भी प्रकट करते रहते हैं। दूसरों के सकट या पतन में खुश होना केवल अपने लिए अनावश्यक भयकर अशुभ कर्मों का बंधन करना है। अतः प्राणी को हमेशा दुर्भावना से बचना चाहिए और दूसरों के लिए शुभ भावना भाकर अपना आध्यात्मिक विकास करना चाहिए।

जो प्राणी दुर्भावना से भरा हुआ है उसके लिए विकास और साधना के सभी दरवाजे बंद हो जाते हैं। वह किसी का कुछ भी बुरा नहीं करता हुआ भी तन्दुल मत्स्य की भाँति सातवीं नरक के आयुष्य का बंधन लेता है। तन्दुल मत्स्य एक छोटा-सा चावल के दाने जितना मत्स्य होता है। वह बड़े-बड़े मत्स्य के भौंह पर बैठा रहता है। बड़ा मत्स्य मुँह खोले हुए पड़ा रहता है। अनेक मछलियाँ जल प्रवाह के साथ उसके मुँह में जाती हैं और सुरक्षित ही खेलती हुई उसके मुँह से बाहर निकल जाती हैं। वह चावल जितना छोटा तन्दुल मत्स्य सोचता है—“यदि मैं इस बड़े मत्स्य की जगह होता तो एक भी मछली को मुँह में आने के बाद बाहर नहीं निकलने देता।” वह खाता तो एक भी मछली को नहीं है, किन्तु केवल दुर्भावना के कारण ही सातवीं नरक जाता है।

दुर्भावना का दूसरा रूप है दूसरों को दुःख देने का विचार करना। ऐसा प्राणी केवल भाव-हिंसा से ही महान भयकर नरक के आयुष्य का बंधन लेता है। दुर्भावना से बचने और भावना को शुभ एवं शुद्ध बनाने के लिये बार-बार दोहराइये—

सबका भला हो, सबका भला हो, सबका भला हो।



छटा—सभी प्राणी एक दूसरे के लिए निमित्त से अधिक कुछ नहीं है। निमित्त को “अपना” समझना और उस पर मोह करना भूल है।

सातवा—प्राणी ने मनुष्यो, देवो, तिर्यचो के अनेक परिवारो मे अनेक बार जन्म लिया है। वह किस परिवार को अपना परिवार माने ? वह उन्हें पहचान भी नहीं सकता।

आठवा—एक महिला पीहर को अपना परिवार माने या ससुराल को ? जिस महिला ने दो-तीन बार तलाक दिया है वह अपना परिवार किसे समझे। पीहर को या प्रथम ससुराल को या दूसरी ससुराल को या तीसरी ससुराल को ? एक मनुष्य के कई पत्नियाँ हैं। क्या आने वाले भविष्य के जन्म मे भी यह परिवार कायम रहेगा ? राजा सगर के साठ हजार पुत्र बताये गये हैं और कौरव सौ भाई थे। क्या भविष्य मे भी ये परिवार ऐसे ही परिवार बने रहे थे या सब अलग-अलग हो गये थे ?

नवा—मनुष्यो के कर्म, मन के विचार और भावनाएँ अलग-अलग होती है। वे मर कर अलग-अलग गतियो मे अलग-अलग परिवारो मे जाते है। अत परिवार किसी का स्थायी नहीं रहता, वे हमेशा बदलते रहते है।

दसवा—एक प्राणी की दसवी पीढी मे उसके सैकडो परिवार बन जाते है। वह किसे अपना परिवार माने ? किसमे जन्म ले ?

ग्यारहवा—यदि परिवार मे सब अपने ही अपने होते तो “अपनो” मे अलगाव, मन-मुटाव, शत्रुता और बदला लेने की भावना क्यों रहती है ? सुग्रीव-बालि, कर्ण-अर्जुन, कौरव-पांडव, रावण-विभीषण, उग्रसेन-कस, हिरणकश्यप-प्राहाद आदि इस बात के प्रमाण है कि परिवार मे शत्रु भी जन्म लेते है। परिवार के सभी सदस्य आपस मे “अपने” नहीं होते। ससार मे कोई किसी का “अपना” नहीं होता। प्राणी को अकेले से दुकेला तो उसके कर्म ही बनाते है।

बारहवा—प्राणी की सबसे बडी चाह है सुख की प्राप्ति। किन्तु वह भूलता है कि हमारे सुख मे निमित्त बनना भी परिवार के हाथ मे नहीं है। सुख-सुविधा की प्राप्ति होती है शुभ कर्मो से, पुण्योदय से। हमे सुख देना किसी अन्य प्राणी या हमारे परिवार के हाथ मे नहीं है। हमे पर-कृत या परिवार-कृत का फल नहीं मिल सकता। इस ज्ञान मे दृढ श्रद्धा का उत्पन्न होना ही परिवार-ममता-मोह को दूर करता है। याद रखिये—“पर-कृत या परिवार-कृत कर्म का फल हमे नहीं मिल सकता, परिवार बेचारा क्या करे ?”



अनेक सघर्ष और अनर्थ करता है। ये सब दुख से दुखी होने के विचार के कारण होते हैं। यदि प्राणी उसे दुख नहीं मानकर उसे अपने कर्मों का फल माने, उसमें समभाव रखे, उसे कर्म-रोग काटने की दवा माने और उसे हँसते-हँसते पी ले अर्थात् सहन करले, उससे कुछ शिक्षा ग्रहण करे तो वह दुख भूल में पड़ जाता है। विचार धारा दूसरी ओर चली जाती है और दुख दुख नहीं रहता, वह समता के कारण दुख और कर्म काटने की दवा बन जाता है।

दुख पदार्थ या परिस्थिति में नहीं रहता, वह विचारों के कारण पैदा होता है, जिस भूख और कष्ट में साधारण लोग दुख मानते हैं उसी भूख और कष्ट में तपस्वी सुख मानते हैं। भूख में जो भोजन मीठा लगता है वही मीठा भोजन पेट अधिक भर जाने पर दुखद लगने लगता है। शत्रु द्वारा जिस गाली को सुनकर प्राणी को दुख होता है और क्रोध आता है, ससुराल में गीतों में उसी गाली को सुनकर उसे प्रसन्नता होती है। यह सब विचारों से होता है। यदि प्राणी अपनी विरक्त विचार धारा को दृढ़ करे और कष्ट को सहर्ष सहने का अभ्यास करता रहे तो उसे दुख चेतना से बचने के लिए कोई कठिनाई नहीं होगी। वह अनेक प्रकार के कष्टों और कर्म बधनों से बच जावेगा।

चक्रवर्ती की पटरानी श्रीदेवी पति-वियोग में छ महीने विलाप करती है और वह छठे नरक में जाती है। अतः दुख चेतना से बचना चाहिये।

दुख चेतना में प्राणी अनेक प्रकार के सकल्प-विकल्प करता है, आरम्भ-समारम्भ की योजनाएँ बनाता है, शत्रु से बदला लेने के भावों में अशुभ विचार धारा में बहता चला जाता है और विचारों के प्रवाह में ही भयकर कर्मों के बधन करके नरक में चला जाता है। दुख चेतना से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है। यदि किसी भी परिस्थिति में प्राणी दुख को दुख नहीं माने, दुखी नहीं होवे, उसे कर्मों का फल माने और समता रखे तो वह मोक्ष प्राप्ति के मार्ग का यात्री बन जाता है। उसके लिये मोक्ष का मार्ग सरल और सुगम बन जाता है।

### सुख चेतना-निवृत्ति

अनुकूल परिस्थिति में, भौतिक सुख भोगों में, सुख अनुभव करना सुख चेतना है। राज्य सत्ता पाने पर, धन-सम्पत्ति एवं भोगों की प्राप्ति होने पर, मद्य-मासादि में, जुआ व्यभिचार आदि में, प्राणी सुख अनुभव करता है। मासाहारी पशुओं का शिकार करने में, अडे आदि के भक्षण में सुख मानता है। यह सुख चेतना है। कुछ व्यक्ति दूसरों को दुख देने में, लड़ाने-भिड़ाने





सुख वास्तव में है त्याग में, प्राप्त पदार्थों और आये हुए सुखों को दूसरों को देने में। अपना तो अपनी आत्मा के सिवाय कुछ भी नहीं है। ससार के सभी पदार्थ पराये हैं, दूसरों की धरोहर हैं। इस धरोहर को सभालने में नहीं, किन्तु लौटाने में ही सच्ची स्वतंत्रता और सुख है। इसे रखना तो परतंत्रता है, चौकीदारी है, बधन है, भय और चिन्ता को गले लगाना है। सच्चा सुखी वही है जो दुखियों के दुख को दूर करे और सुखियों के सुख को देखकर प्रसन्नता अनुभव करे। “सच्चा सुख है इच्छा-निवृत्ति में, परिग्रह त्याग में, धरोहर लौटाने में।”

प्राणी जो भी काम करता है वह चाहे कुछ भी हो, उसका अन्तिम मूल लक्ष्य होता है—भविष्य में सुख प्राप्ति की आशा। और सुख प्राप्ति का माध्यम है शरीर, इन्द्रियाँ और मन। अतः सुख चेतना-निवृत्ति के लिये आवश्यक है देह की आसक्ति से निवृत्ति।

देहासक्ति छोड़ने का प्रथम सूत्र है—

यह शरीर मेरा नहीं है, यह नाशवान है  
इसके जाने से मेरा कुछ भी नहीं जाता।

दूसरा सूत्र है—

खणमेत सोक्खा, बहुकाल दुक्खा।

क्षणभर का सुख बहुत समय तक दुख देता है।

कभी-कभी इस शरीर में इतने भयंकर वेदना वाले रोग एक ही साथ पैदा हो जाते हैं कि प्राणी का सुख से जीना कठिन हो जाता है। कैंसर, ऑतडियो में घाव, पैर की हड्डी का टूट जाना आदि प्राणी को सुख से नहीं जीने देते। “यह शरीर दुखों की खान है।” शरीर की आसक्ति छूटने से सुख-चेतना छूट सकती है।

## इच्छा-निवृत्ति

इच्छा भी मानव की बड़ी कमजोरी है। इच्छा ही ससार है, यही बधन है। यही सब योजनाओं, दुर्भावनाओं, अवगुणों, दुखों, कष्टों, सघर्षों एवं युद्धों का कारण है। यदि इच्छा समाप्त हो जाती है तो उस प्राणी के लिए ससार भी नहीं रहता, विषय वासनाएँ नहीं रहती, वह पूर्ण पुरुष बन जाता है।

इच्छा साधारणतया पाँच प्रकार की होती है—1 दुखों से भागने की, 2 सुख भोगने की, 3 शत्रुओं को मारने पीटने की, 4 अपने प्रियजनों को तारने, सुधारने एवं सुख देने की और 5 धर्म पालन द्वारा अपना भविष्य सुधारने की।



करने से ही होती है, केवल इच्छा करने से और अशुभ खोटे पुरुषार्थ से नहीं होती।

कुछ लोग अपनी इच्छापूर्ति के लिए अपनी प्रखर बुद्धि और अपने बल का प्रयोग करते हैं। इस सबध में तीन बातें याद रखने योग्य हैं—1 बुद्धिर्यस्य बल तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बल, 2 बुद्धि कर्मानुसारिणी, 3 विनाशकाले विपरीत बुद्धि अर्थात् 1 जिसके पास बुद्धि है उसके पास बल है, बुद्धिहीन के पास बल कहाँ है ? 2 बुद्धि प्राणी के पूर्वकृत कर्मों का अनुसरण करती है अर्थात् शुभ कर्मोदय के समय अच्छी और सहायक बन जाती है और अशुभ कर्मोदय के समय विपरीत और नाशक बन जाती है। यदि किसी को काश्मीर की ओर जाना हो तो उसके अशुभ कर्मोदय के समय उसकी बुद्धि में कोलम्बो का मार्ग ही काश्मीर पहुँचाने वाला दिखने लगता है और उसका यात्रा का पुरुषार्थ उस गतव्य स्थान के पास पहुँचाने के बजाय उसे दूर भेज देता है। उसकी सारी यात्रा, सारा पुरुषार्थ अधिक हानिकारक बन जाता है, 3 विनाश के समय बुद्धि विपरीत बनकर प्राणी का नाश करवा देती है। कौरव, यादव, रावण आदि इसके अनेक उदाहरण हैं।

केवल बुद्धि और बल से ही मनोरथ पूर्ण हो जाते तो आज बहुत से व्यक्ति जो दुःखी हैं, दुःखी नहीं रहते। बुद्धि और बल से ही इच्छा की पूर्ति नहीं होती।

इच्छा-निवृत्ति के लिये जपने का सूत्र है—

“यदि पुण्य का उदय है तो इच्छा के बिना भी सुख-सम्पत्ति की वर्षा हो जाती है। यदि पाप का उदय है तो इच्छा या पुरुषार्थ करने पर भी कुछ नहीं मिलता। अतः इच्छा-निरोध तप करके कर्मक्षय क्यों नहीं करते ?”

निष्काम भावना से, स्वार्थ रहित मन से, दूसरों का भला करने, उनकी शुद्ध सेवा करने, उनका आत्महित करने में निमित्त बनने की इच्छा रखना एव प्रयास करना, इच्छा दिखते हुए भी इच्छा नहीं है। ये कर्तव्य पालन हैं जिसका उपदेश ससार के प्रायः सभी धर्म गुरुओं ने दिया है और अपनी मर्यादा के अनुसार उसका पालन भी किया है।

अहंकार-निवृत्ति

अनेक आन्तरिक शत्रुओं को जीतने वाले बड़े-बड़े उपदेशक और धन और स्त्री-परिवार आदि के महान त्यागी तपस्वी सत महात्मा भी कभी-कभी



बडा कौन है, बडा कौन है, मुझे बताओ बडा कौन है।

बडा वही है, बडा वही है, जो झुकता है बडा वही है।।

छोटी-छोटी बातो पर कभी नही अकडना चाहिए।

अहकार सब अवगुणो एव बुराइयो का मूल है। अभिमानी व्यक्ति को लोग अपने मन मे महामूर्ख समझते है। लोग अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये चाहे उसके सामने उसकी बडाई करते हो किन्तु वास्तव मे उससे घृणा करते है। अहकार नरक का मार्ग है। अहकार से दान, शील, तप, धार्मिक आचरण आदि सभी अच्छी क्रियाओ का फल मोक्ष प्राप्ति की दृष्टि से प्राय निरर्थक-सा रहता है।

अहकार से बचने का प्रथम उपाय—यह सूत्र जपना कि “किसी प्राणी को उसके पाप कर्म फल भोग से मै या तीर्थकर भी नही बचा सकते और मेरे भयकर निकाचित कर्मो की रेखाओ को मै नही बदल सकता, फिर अहकार किस बात का करू ?”

दूसरा उपाय है—अपने अवगुणो को याद करके उनके लिये पश्चान्ताप करना एव उन्हे दूर करने की साधना करना।

तीसरा उपाय है—इस बात का चितन करना कि अहकारी प्राय कौवे की भौंति प्रशसा करने वाली लोमडी से टगा जाता है या अकडने वाले पेड की भौंति आधी से उखाड कर फेक दिया जाता है।

## सग्रह-निवृत्ति

भगवान महावीर का यह स्पष्ट कथन है कि आत्मा के सिवाय कोई भी अन्य पदार्थ अपना नही है। धन-सम्पत्ति, परिवार और यह शरीर भी अपना नही है। ये सब मृत्यु के आते ही पीछे छूट जाते है। ये सब पर-पदार्थ है। इनमे आसक्ति रखने वाला, इनका सग्रह करने वाला, इनका लोभ करने वाला, इन परिग्रहो को जमा करने वाला, ससार से ही बधा रहेगा, ससार मे ही चक्कर काटता रहेगा। ससार से छुटकारा और मोक्ष की प्राप्ति तभी समभव है जबकि प्राणी धीरे-धीरे या तुरन्त ही इनका मोह छोडकर पूर्ण अपरिग्रही, पूर्ण त्यागी बने।

साधारण व्यक्ति के लिए त्याग का क्रम कुछ-कुछ इस प्रकार हो सकता है—प्रथम सुख-दुख-चेतना-निवृत्ति की साधना, फिर धन सम्पत्ति



मरते समय यदि किसी से मोह-ममता रह गई तो मरने के बाद सर्प, भूत, प्रेत बनकर वही मडराते रहोगे, दुःख पावोगे और दुर्गति में जावोगे। ध्यान का सूत्र है—“पुण्य का उदय हो तो चाहे जितना दान दो, धन की कमी नहीं होगी और पाप का उदय है तो धन किसी भी तरह ठहरने वाला नहीं है।”

## विकथा-निवृत्ति

विकथा का अर्थ है—व्यर्थ की कथा। दूसरों के बातों की अनावश्यक चर्चा, उनके दोषों का कथन, श्रवण एव चितन विकथा है। दुनिया की स्वार्थ-प्रेरित, स्वार्थभरी, पक्षपात पूर्ण, गन्दी राजनीति आदि की बातों के समाचार, लेख, भाषण, साहित्य, आलोचना आदि को पढना, सुनना, उनकी राग द्वेषात्मक बातों में पढना विकथा है। यह अनर्थ दड है, प्रमाद है, भावहिंसा है, राग-द्वेष है।

जैन आगमों में विकथा के चार भेद बताये गये हैं—स्त्री-पुरुष कथा, देशकथा, राजकथा, भोजन कथा। बड़े-बड़े समझदार पंडित, विद्वान, धर्मात्मा, नेता और साधक लोग भी आजकल विकथा में पढना अपनी शान समझने लगे हैं। यह वर्तमान सभ्यता का एक चिह्न बनने लगा है किन्तु इसमें 80 प्रतिशत लोगों का 80 प्रतिशत समय व्यर्थ जाता है। एक बात और भी है कि हम दूसरों के भीतरी भावों को जान नहीं सकते। इसलिये एक पक्ष को भला और दूसरे पक्ष को बुरा समझने का हमारे पास कोई आधार भी नहीं है। इस दृष्टि से विकथा से असत्याचरण का बड़ा दोष भी हमें लग जाता है।

घरों में बैठी हुई महिलाएँ, मर्दान्नी बैठक में बैठी हुई मित्र-मडली, राजनीतिक गद्दी चर्चा में रसपान करने वाली जनता और कभी-कभी धर्मस्थान में बैठे हुए भक्त लोग भी विकथा के सागर में नहाने लगते हैं।

विकथा से बचने के लिए पाँच निषेजात्मक और पाँच विधेयात्मक उपाय हैं। जहाँ दूसरों की निन्दा होती है, झूठी प्रशंसा होती है व्यर्थ की, राग-द्वेष बढ़ाने वाली बातें होती हैं वहाँ पर कुछ भी

मत कहो वहाँ से उठकर चले जाओ

मत सुनो अपने काम में लग जाओ





## साधना का सुगम मार्ग

हमारा लक्ष्य है निर्विकार दशा की प्राप्ति। इसके लिये क्या यह ज्यादा हितकारी नहीं रहेगा कि अन्य दूसरे प्रकार के साधना और ध्यान के मार्गों में अपना समय नहीं लगा कर हम अपनी साधना क्रोध-निवृत्ति या दुर्भावना-निवृत्ति-से ही प्रारंभ करें ? इधर-उधर भटकने से क्या लाभ ?

अवगुण-निवृत्ति की साधना में दो लाभ हैं। प्रथम—इससे सभी मानसिक तनाव आदि दूर होंगे और मन पर पूर्ण विजय प्राप्त होगी। दूसरा—इससे हमारे सचित कर्मों की महान निर्जरा होगी।

ध्यान के लिए सात बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। 1 ध्यान का सूत्र, 2 शांत एकांत स्थान, 3 सुखासन, 4 निर्धारित शांत समय, 5 एकाग्रता, 6 पुनरावृत्ति और 7 अभ्यास। इसमें अंतिम दो बातों पर विशेष ध्यान दिया जावे। सूत्र को दिन रात में कई बार दोहरावे। सोते-जागते, उठते-बैठते, बस में यात्रा करते समय भी, दुकान में काम करते समय भी, और रात्रि में बिस्तर पर लेटे हुए भी स्वाध्याय या ध्यान के सूत्र को दोहराइये। पुनरावृत्ति यानी दोहराना साधना का महत्त्वपूर्ण अंग है।

साधना में अभ्यास का भी बहुत महत्त्व है। इस पुस्तक के प्रारंभ में अभ्यास के कुछ भेद बताये गये हैं। उनके अलावा किसी गुण को जीवन में उतारने के अन्य तरीके भी हो सकते हैं। गुणों को अपने आचरण का अंग बनाना ही साधना का चरम लक्ष्य है।

आत्मा की निर्विकार दशा की प्राप्ति के लिये आचरण शुद्धि की आवश्यकता है और आचरण की शुद्धि तभी संभव है जबकि विचार शुद्ध हो सके। विचार-शुद्धि का उपाय है दिन रात में कई बार समता या स्वाध्याय के सूत्रों को दोहराते रहना, उनकी पुनरावृत्ति करते रहना। और आचरण-शुद्धि का उपाय है—उन सूत्रों का पालन करना, उन्हें आचरण में उतारना। किन्तु यदि मोहनीय कर्म की प्रबलता से इस जन्म में यदि वे आचरण का अंग नहीं बन सके तो भी उनकी साधना में लगे रहिये। उनके चित्त-मनन और स्वाध्याय से बने हुए सस्कार व्यर्थ नहीं जावेगे। वे अगले किसी जन्म में साधक की आचरण-शुद्धि में सहायक बनेंगे। कोई भी क्रिया व्यर्थ नहीं जाती। फिर इन सूत्रों का ध्यान या स्वाध्याय तो आभ्यंतर तप है। वह व्यर्थ कैसे जावेगा ?

## हृदय परिवर्तन की कला

अपनी सतान या किसी सबधी या मित्र का हृदय-परिवर्तन (सुधार) करने हेतु इन बातों का पालन कीजिये। 1 उसे सुधारने का विचार कीजिये। 2 स्वयं को प्रथम सुधारिये। एक शराबी किसी दूरे-उपदेश देकर शराब नहीं छुड़ा सकता। 3 जिसे सुधारना हो तब यथाशक्ति यथा मर्यादा सहायता कीजिए। उसे अपनी तरफ आकर्षित कीजिये। 4 दूसरों के सामने उसकी बुराई या निन्दा मत कीजिये। 5 उससे घृणा या द्वेष मत करिये। 6 उसकी विषमता या अवगुण कारण ढूँढिये और उसे कुमार्ग, कुसगति, कुप्रभाव और कुविचारों से रखने के उपाय कीजिये। 7 उसके गुणों की प्रशंसा कीजिये जिससे आपको अपना हितैषी समझने लगे। 8 जब वह किसी खुशी की बात हो उस समय एकांत में प्रेम-पूर्वक उससे वार्तालाप करते हुए प्रशंसा के ढंग से उसी के मुँह से उसकी भूल या अवगुण की बात कहलवाइये। 9 तक हो आप अपने मुँह से उसके अवगुण की बात नहीं कहे।

9 यदि वह आपसे दूर रहता हो या मिलना जुलना पसंद नहीं करता हो या नाराज रहता हो तो उससे उसके समाने कुछ भी नहीं कहें। रात्रि में जब कि वह प्रायः शांत या सुप्त अवस्था में हो या उषाकाल में उपदेशात्मक विचार या सुधार के निर्देश विचार तरंगों द्वारा भेजिये। चोरी करने वाले को चोरी की आदत छुड़ाने के लिये यह संदेश भेजिये—  
भाई तुम इमानदार बनो, सत्यवादी बनो। सत्यवादी की सहायता लोग और देवता भी करते हैं। सत्य एक महान तप है।”

10 यदि कोई महिला रात्रि में, सवेरे ऐसा चिंतन करे या जागृत हो कि “मेरी सतान सुन्दर, स्वस्थ, सुशील और सुयोग्य हो” तो उसकी सतान उसके विचारों के अनुसार ही होगी।

11 रात्रि में मौन विचार तरंगों भेजते समय यह कल्पना कीजिये कि आप यह निर्देश चुपचाप उसके कान में कह रहे हैं चाहे वह हजारों मील दूर ही बैठा हो या सो रहा हो। धैर्य और विश्वास से कुछ महीने सफलता मिलेगी।

## : कषाय मुक्ति :

तीसरा भाग

### कषाय मुक्ति की कसौटी और फल

वही मुनि कषाय मुक्त माना जाता है जो रोग या दुःख में दुःखी नहीं होता। भौतिक सुख (इन्द्रिय सुख या शरीर सुख) को सुख नहीं मानता और हर समय शुद्ध भावना (विचार या ध्यान) में लीन रहता है। कषाय मुक्ति का फल है—सिद्ध पद की प्राप्ति।

### कषाय-मुक्ति का अभ्यास

कषाय से मुक्त होने का अभ्यास करने का सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ स्थान है—गृहस्थी के लिए अपना घर। जो पुरुष या स्त्रीयाँ अपने क्रोध, अहभाव, कपट और स्वार्थ को छोड़कर प्रेमभाव, विनयभाव और अनुकम्पा भाव से त्याग भाव पूर्वक अपने वृद्ध माता-पिता, भाई-बहिन, सास-ससुर और सगे-सबधी की सेवा करते हैं, वे कषाय मुक्त हो जाते हैं। जो घर में ही लड़ाई-झगड़े, कपट, कलह आदि रखते हैं उनके लिए कषाय मुक्त हो जाना कठिन हो जाता है। कुछ मनुष्य और स्त्रियाँ जब तक वे स्वयं वृद्ध नहीं हो जाते तब तक वे वृद्धों के मन की वेदना को समझ नहीं पाते। जब वे स्वयं वृद्ध हो जाते हैं तब उन्हें पता चलता है कि घर के वृद्ध लोगों के मन में वेदना क्या थी और वे क्या चाहते थे ? तब वे पछताते हैं और कहते हैं—हाय ! हाय ! हमने अपने जीवन में कुछ नहीं किया। हमने घर में लड़ाई-झगड़े रखे। हमने वृद्धों के अंतर की बातों को नहीं सुना और वे अपने मन की बातें अपने साथ मन में ही ले गए।

ससार में मनुष्य चाहे कितना ही गरीब हो किन्तु यदि वह अपने वृद्ध माता-पिता, भाई-बहिन, सास-ससुर, सगे-सबधी एवं धर्म गुरुओं की प्रेमपूर्वक सेवा करता है तो ससार के महापुण्यवान और महाभाग्यवान लोगों की गिनती में उनका स्थान गृहस्थों में सर्वप्रथम रहता है। ऐसे पुरुष ही कषाय मुक्त होते हैं और वे अपना ससार घटाते हैं।



2 क्रोध कितने प्रकार का होता है ? 3 यह कब आता है ? 4 क्रोधी अपने मन में शत्रु के प्रति क्या विचार करता रहता है ? 5 क्रोधी क्या उत्पात मचाता है ? 6 क्रोधी मनुष्य के उदाहरण, 7 क्रोध से होने वाली हानियाँ, 8 क्रोध जीतने वालों के उदाहरण, 9 क्रोध जीतने के लाभ, 10 क्रोध पर विजय पाने के साधारण नियम, 11 क्रोध जीतने के विशेष नियम। शुरु के दस प्रश्नों के उत्तर कुछ महीनों तक प्रतिदिन पाँच-दस बार दोहराइये और अंतिम ग्यारहवें प्रश्न का उत्तर कुछ वर्षों तक प्रतिदिन कम-से-कम पन्द्रह-बीस बार दोहराइये। क्रोध के जो संस्कार अनंत अनादिकाल से मनुष्य के साथी बनकर उसके अचेतन मन में गहराई तक बैठे हुए हैं उनको हटाने में महीनों और वर्षों लग जाना कोई बड़ी बात नहीं है।

मनुष्य का चेतन मन अर्थात् उसका वर्तमान ज्ञान, क्रोध को बुरा समझकर छोड़ना चाहता है किन्तु उसका अचेतन मन अर्थात् पूर्व जन्मों का गलत अनुभव क्रोध को अपना हितकारी मित्र मानता है और उसे छोड़ना नहीं चाहता। अतः अचेतन मन को समझाने के लिए चेतन मन को महीनों और वर्षों साधना करनी पड़ती है। अचेतन मन को हमेशा के लिए निकालने के लिए क्रोध पर विजय पाने के उपाय बताने वाली पुस्तकें पढ़िए। इस सबंध में अन्य लेख भी पढ़िये। सतों के प्रवचन सुनिये, उनसे उपाय पूछिए। पूर्ण समताधारी मुनि गजसुकुमाल जैसे मुनिजनों की पूर्ण समता को बताने वाले साहित्य पढ़िए। इस अध्ययन के साथ-साथ अपनी कॉपी में मुख्य-मुख्य बातें भी लिखिये। एकांत में बैठकर इस सबंध में चिंतन-मनन कीजिए। अपनी आत्मा में अनंतज्ञान और अनुभव भरा हुआ है। उससे कुछ उपाय पूछिए। फिर कुछ वाक्य या सूत्र प्रतिदिन स्वाध्याय के लिए बनाइये। उनका जप करिये। अधिक से अधिक समय उसके चिंतन मनन में दीजिए। इससे सफलता अवश्य मिलेगी।

## क्रोध मुक्ति के उपाय

क्रोध के सबंध में कषाय मुक्ति प्रथम भाग, कषाय मुक्ति द्वितीय भाग में काफी सामग्री दी गई है। क्रोध छोड़ने के साधारण उपाय हैं—क्रोध आये तब ठंडा जल पीना, वहाँ से उठकर दूर चले जाना, मन को अच्छे लगने वाले काम करना, कहानी, लेख या पुस्तकों को पढ़ने में लग जाना चाहिए। क्रोध को जीतने के विशेष उपाय निम्न हैं—दुःख या दुःख अपने अशुभ कर्मों से मिलता है, परिवार या दूसरे लोग या रोग या दुर्घटनाएँ तो केवल निमित्त ही बनते हैं। मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदाई की पूर्ण समता की



रखे जाने पर भी पूर्ण समता बनाये रख सकता है। इस विषय में “ध्यान एक अनुशीलन” पुस्तक से जानकारी मिल सकेगी।

## अहकार से मुक्ति

अहकार एक ऐसा अवगुण है जिससे अहकारी का आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक पतन होता रहा है। चापलूस लोग उसे ठगते और चूसते रहते हैं। समाज के अच्छे-अच्छे आदमी उससे घृणा करने लगते हैं और उस अहकारी व्यक्ति को दान, शील, तप आदि धार्मिक क्रियाओं का फल मिलना रुक जाता है। मुनि बाहुबलीजी को अहकार के कारण ही घोर तप करने के बाद भी केवलज्ञान मिलना रुका रहा।

एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को तार नहीं सकता, मार नहीं सकता, बना नहीं सकता, बिगाड़ नहीं सकता। दूसरो के कर्मों को बदल नहीं सकता, अपने स्वयं के निकाचित कर्मों से बच नहीं सकता। वह अपने धन से अपने दुखों को दूर कर नहीं सकता। उसके पापोदय के समय उसका परिवार उसकी सहायता कर नहीं सकता और जब वह बीमार या वृद्ध हो जाता है तब वह स्वयं को भी संभाल नहीं सकता। ऐसी स्थिति में किसी भी प्राणी के लिए किसी भी बात का अहकार करना भयकर भूल और निरर्थक है। बलवान मनुष्य नहीं होता है, बलवान होता है समय।

रहिमन नर को कहा बड़ो, समय बड़ो बलवान।

काबा लूटी गोपिका, वही अर्जुन वही बाण॥

अर्थात्—गोपिकाएँ लूट ली गईं और महाभारत का सबसे बड़ा विजेता अर्जुन खड़ा-खड़ा देखता रह गया। योग के अनुसार द्वारिका जलने लगी, यादव मरने लगे, श्रीकृष्ण के माता-पिता देवकी महारानी और श्री वासुदेवजी चिल्लाकर कहने लगे—“अरे कृष्ण ! अरे बलराम ! हमें बचाओ। उस समय के सबसे बड़े शक्तिशाली और सबसे अधिक बुद्धिमान श्रीकृष्ण और बलराम ने अपने माता-पिता को बचाने का प्रयास भी किया किन्तु वे उन्हें बचा नहीं सके। वे खड़े-खड़े देखते ही रह गये।

तीर्थकर महावीर के दो शिष्य मुनि सुनक्षत्र और मुनि सर्वानुभूति उनकी आँखों के सामने ही गोशालक द्वारा तेजोलेश्या छोड़कर जला दिए गए। तीर्थकर महावीर के पास शीतोलेश्या थी जो तेजोलेश्या को शांत कर देती है, फिर भी दोनों सत बच नहीं पाए। शक्ति मनुष्य में नहीं होती, शक्ति होती है समय में, शुभ कर्मों में। मनुष्य को किसी भी बात का अहकार करना भयकर भूल है। अहकार से बचने के लिए इस सूत्र का बार-बार





हुए या समाचार पत्रों में दो समाचार पढ़कर प्राणी एक का समर्थन व अनुमोदन करता है और दूसरे का विरोध और उसकी निंदा करता है। इस प्रकार हजारों लाखों मनुष्यों की हत्या का अनुमोदन करना घोर दुर्भावना है।

इन वर्णों को पढ़ते हुए समझदार प्राणी मारकाट का अनुमोदन नहीं करते हुए मरने वालों के लिए अपने मन में अनुकम्पा भाव लाकर और मारने वालों को सदबुद्धि देने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करता हुआ दुर्भावना की जगह सद्भावना भरता हुआ कर्मों की महान निर्जरा भी कर सकता है। दुर्भावना से बचने के लिए "सबका भला हो, सबका भलो हो" इस मंत्र का जाप करना चाहिए।

### सुखानुभूति से मुक्ति

मनुष्य प्रायः अपने सभी काम या अधिकांश काम भौतिक या शारीरिक सुख प्राप्ति की भावना से करते हैं। वे महाआरम्भ, महापरिग्रह और महाभयकर युद्ध आदि के कर्मों में लगे रहते हैं। वे विशालकाय हिंसक कारखानों, बड़े-बड़े पशुवध घरों (कत्लघरों) के निर्माण की कल्पना और योजना बनाने में डूबे रहते हैं। अवसर मिलने पर उन्हें कार्य रूप में परिणित करते हैं। इस प्रकार वे महाभयकर कर्म करते हैं जिससे कुछ लोग सातवे नरक में भी पहुँच जाते हैं। कुछ लोग इस तथ्य को जानते हुए भी इन कार्यों से बचने का विचार नहीं करते क्योंकि अनन्त अनादिकाल से हिंसक काम करते रहते हैं और आज समाज में बड़े माने जाने व पूजे जाने वाले ऐसे ही लोगों का देखकर उनका अनुकरण करते हुए साधारण लोग भी इस ओर झुक जाते हैं। बहुत से साधारण लोग भी जो इन योजनाओं को कार्य रूप में परिणित नहीं कर सकते वे बाहर से किंचित मात्र हिंसा न करते हुए भी केवल कल्पना के द्वारा अपने मन के परिणामों को हिंसक बनाकर भयकर कर्मों का बंध करके नरक में पहुँच जाते हैं।

लोग कहते हैं कि हम धन इसलिए कमाते हैं कि धन से सुख मिलता है किन्तु उनका यह भ्रम है। कम धन होने के कारण मनुष्य को जितना दुःख मिलता है उससे कई गुणा अधिक दुःख धनवानों को धन के कारण उत्पन्न होने वाली अपनी घरेलू समस्याओं से मिलता है। उसकी तुलना में धन से अनेक दुःख भी मिलते हैं। धनवानों के अनेक शत्रु होते हैं, उनका जीवन भी सुरक्षित नहीं है। उनका शरीर चिता की आग में जलता रहता है। सेठ धन्नाजी को उनके भाई धन के कारण मारने का प्रयत्न करते थे। अपने नगर का सबसे धनाढ्य व्यक्ति मम्मण सेठ क्या कभी रात में भी सुख



मनुष्य को कई कष्ट उठाने पड़ते हैं और उनका परिणाम भी भोगना पड़ता है। 1 धन कमाने के लिए वे अपने जीवन को खतरे में डालते हैं। 2 अपने स्वास्थ्य को खोते हैं। 3 भारी अशुभ कर्मों का बंध करके बाद में उनका बुरा फल भोगते हैं। 4 धन वालों की सतान अक्सर लड़ती रहती है। 5 कभी-कभी आलसी और चरित्रहीन भी बन जाता है। 6 धनवान धन की रक्षा के लिए चिंतित रहते हैं। उन्हें डकैती आदि का भय रहता है। 7 धनवानों के सगे-सबधी उससे धन माँगते हैं और नहीं देने पर नाराज होकर उनके शत्रु बन जाते हैं। 8 धन से किसी के कर्मों को बदला नहीं जा सकता। 9 किसी की चिंता दूर नहीं की जा सकती। 10 असाध्य रोग को मिटाया नहीं जा सकता। 11 सत्य को टाला नहीं जा सकता। 12 धन से धर्म खरीदा नहीं जा सकता। 13 धन होने पर भी अशुभ कर्मों का उदय हो तो सुख की प्राप्ति नहीं होती, राजा-महाराजा और धनी आदमी प्रायः दुखी होते देखे गये हैं। 14 धन पास में न होने पर भी सत, महात्मा, ईमानदार आदमी और सतोषी पुरुष सुखी देखे गये हैं और उनके लिये आवश्यकता पड़ने पर धनवान लोग लाखों रुपया खर्च करने के लिए तैयार रहते हैं। अतः सुख धन से नहीं पुण्योदय से मिलता है।

## परिवार-मोह

परिवार के सबंध में तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं—परिवार में आज जिस-जिस प्राणी ने जिस-जिस प्राणी के साथ, जिस-जिस रूप में पति-पत्नी, भाई-बहिन, पिता-पुत्र आदि के रूप में जो जैसा सबंध जोड़ा है, वह वैसा सबंध पहले हमेशा नहीं रहता है और भविष्य में ही हमेशा नहीं रहेगा। इतना ही नहीं बल्कि यह भी निश्चित नहीं है कि अन्य किसी रूप में दूसरा कोई सबंध भी रहेगा या नहीं। ऐसी स्थिति में व्यावहारिक भाषा में हम किसी प्राणी को अपने परिवार में कह सकते हैं, किन्तु निश्चय दृष्टि से सभी प्राणी अलग-अलग हैं, स्वतंत्र हैं और अकेले हैं। यहाँ कोई किसी का नहीं है।

द्वितीय—किसी भी प्राणी को उसके शुभ या अशुभ कर्मों के अनुसार जो सुख या दुःख मिलता है उसमें निमित्त बनने के अलावा उसे बदलना या घटाना-बढ़ाना परिवार के किसी भी सदस्य अथवा तीर्थकर के हाथ में नहीं है। अतः 'कर्म-फल भोग' दृष्टि से भी सब प्राणी अलग हैं, स्वतंत्र हैं, अकेले हैं।



मोक्ष पाने की इच्छा रखने वाले को माया छोड़कर मन, वचन और काया से सत्य को जीवन में अपनाना चाहिए। सत्य में महान शक्ति है। साधारण मनुष्य से देवताओं में, देवताओं से तपस्वी में और तपस्वी से सत्यवादी में अधिक शक्ति होती है। इसी कारण सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र ने तपस्वी मुनि विश्वामित्र द्वारा तप-बल से बाधी गई अप्सराओं (देवताओं) के बधन काटे थे। सत्य ही भगवान हैं। सत्य ही सबसे बड़ा तप हैं। सत्यवादी को स्वर्ग के देवता भी प्रेम से देखते हैं और उसकी सहायता करते हैं।

सत्य भाषा के पाँच गुण हैं—हित-हितकारी, मित (कम बोलना), प्रिय, सत्य, निरवद्य (जो हिसात्मक नहीं है)।

## विकथा

बहुत से मनुष्य अपना अधिकांश समय इधर-उधर की व्यर्थ की बातों में या विकथा में लगा देते हैं जिससे अनावश्यक बातों की आलोचना होती है। इसमें अनेक बार हमारे अन्दर ज्ञान की कमी के कारण अशुभ बातों की अनुमोदना और शुभ की निन्दा हो जाती है। हम व्यर्थ ही अशुभ कर्मों का बध कर लेते हैं। कई लोग दूसरे स्त्री-पुरुषों की विकथा, देश की विकथा, या राज्य की विकथा करते हैं जिससे उनका कोई सबध नहीं होता, जिसमें उनका ज्ञान भी नहीं होता। इससे वे अपने वार्तालाप से गलत लोकमत भी तैयार कर लेते हैं, जिससे हजारों मनुष्यों का अहित भी हो सकता है। वे अशुभ कर्मों का बध करते हैं। अतः लोगों को विकथा से बचकर, दान, शील, तप और समता भाव (क्षमा) की घटनाओं और कथाओं का स्वाध्याय, आत्मध्यान और सिद्धों के ध्यान में अपना समय लगाना चाहिए जिससे पाप नष्ट हो, पुण्य की प्राप्ति हो और सिद्ध पद भी प्राप्त हो।

## मोह पर चोट

आठों कर्मों में मोहनीय कर्म सबसे प्रबल और प्रधान है। इस कर्म ने गौतम गणधर के मन में तीर्थंकर महावीर के प्रति प्रशस्त राग पैदा करके कुछ समय तक उनके केवलज्ञान प्राप्ति के काम को रोक दिया। राग चाहे प्रशस्त हो या अप्रशस्त, वह आखिर है तो राग ही। मरुदेवी माता ने कोई त्याग पच्यखाण नहीं किया था। कोई भी व्रत धारण नहीं किया था। फिर भी उनको हाथी के ऊपर बैठे हुए ही और गृहस्थ वेश में ही केवल मोह के

टूटते ही उन्हें वही केवलज्ञान और सिद्ध पद प्राप्त हो गया। सिद्ध पद प्राप्ति के लिए मोह का टूटना आवश्यक है।

हमारे मन में परिवार के प्रति और परिवार वालों के मन में हमारे प्रति मोह उत्पन्न होने का प्रथम कारण यह है कि अनंत अनादिकाल से हमने अचेतन मन ने मोह को अपना उपकारी और सहायक मित्र मानकर इस अपने अन्दर स्थान दे दिया है। मोह अब इतना मजबूत बन चुका है कि अचेतन मन के द्वारा अचेतन मन को यह समझना कठिन हो रहा है कि अनेक दुःख प्राप्त होते हैं। यह मोह अपना शत्रु है, इसे छोड़कर मोह पाने से वहाँ आनन्द ही आनन्द मिलेगा। मोह का दूसरा कारण यह है कि हमारा ज्ञान अल्प है और हम दूसरों के मन की बात भी नहीं जानते। फिर भी हमारे अज्ञान, हमारी आदत और राग-द्वेष के कारण उनको दो भागों में बाँट देते हैं—भले और बुरे।

मोह को मिटाने के लिए हमें भले और बुरे बँटवारे को बद करके, बड़े और छोटे बँटवारे को बद करके केवल एक विचार रखना चाहिए कि सभी लोग आत्माएँ हैं और केवल आत्माएँ ही, इससे राग-द्वेष और मोह की दृष्टि मिट जावेगी।

परिवार के लोगों को हम कहते हैं कि ये मेरा भाई है, यह मेरा भतीजा है ऐसा, कहना और समझना भी मोह बढ़ाना है। यहाँ पर भी हमें केवल यही विचार रखना चाहिए कि कोई किसी का न हुआ है न होगा। सब आत्माएँ अलग-अलग आत्माएँ हैं। एक दूसरे से स्वतंत्र है, कोई किसी का नहीं है।

चौथा कारण हम मोह भाव के कारण अपने परिवार के दुःख को मिटाने के लिए चिन्ता करते हैं और अनेक प्रकार के अच्छे-बुरे, उचित-अनुचित सभी प्रकार के काम करते हैं किन्तु हमें ध्यान रखना चाहिए कि किसी का दुःख दूर करने और उसे सुख पहुँचाने की शक्ति केवल शुभकर्मों में ही है। इसलिए हमें चिन्ता करने और अनुचित काम करने से बचना चाहिए। पाँचवा कारण यह है कि पूर्व जन्मों का कर्ज चुकाने के लिए हम लोग परिवार में आते हैं। कर्जों को अनुकम्पा भाव से सम्यक् सेवा द्वारा चुकाते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हम सब लोग आत्माएँ हैं और सभी मनुष्य आत्माएँ हैं और अलग-अलग आत्माएँ। यह अलग-अलग होने की दृष्टि मोह को दूर करेगी।

सम्यक् सेवा का अर्थ यह है कि हमारे किसी काम से दूसरो के निर्वाह, ज्ञान प्राप्ति और आत्मोन्नति मे बाधा नही पहुँचे किन्तु सहायता मिले। अनुकम्पा भाव या करुणाभाव या दयाभाव या शुद्धभाव का अर्थ है कि हमारे शरीर के हलन-चलन से, खाने-पीने से, उठने-बैठने से, आने-जाने से या हमारे वचनो से, वार्तालाप से या हमारे मन के विचारो से या भावनाओ से दूसरो को 1 दुख नही पहुँचे, 2 उनका पतन नही हो, 3 उनको सुख मिले और 4 सुख के साथ-साथ उनकी आत्म-उन्नति हो। इन चार बातो का ध्यान रखकर सावधानीपूर्वक शरीर से, वचन से या मन से जो काम किया जाता है वह सेवा कार्य कहलाता है। वह सेवा अनुकम्पा भाव से की जाने वाली सेवा कहलाती है। यह सेवा महान तप है और मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है। इससे मोह टूट जाता है। मोह को तोडने के लिए नीचे लिखे पाँच सूत्रो को बार-बार दिन मे कई बार दोहराइये, इनके अर्थ का चिंतन कीजिये, सतो से इस सबध मे चर्चा कीजिए और स्लेट या कॉपी मे इन्हे बार-बार लिखिये। 1 मोह छोडो मोक्ष मिलेगा। 2 सभी जीव आत्मा है, केवल आत्मा है। 3 कोई किसी का हमेशा न हुआ न होगा। 4 दुख दूर करने और सुख देने की शक्ति केवल शुभ कर्मो मे ही है, परिवार के हाथ मे नही है, अनुकम्पा भाव से की जाने वाली सम्यक् सेवा ही मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है।

कर्म कुटुम्ब के बदल न सकता।

चिता मोह व्यर्थ मे ही करता।।

कोई किसी का हुआ न होगा।

कर्म साथ नही रहने देगा।।

## भावना की शक्ति

1 भावना मे अनत शक्ति है। हम अपने शरीर से जितनी हिस्सा और पाप करते है उससे हजारो लाखो गुणा अधिक हिस्सा और पाप किसी जीव को दुख दिए बिना भी केवल अपने विचारो और गलत मानसिक परिणामो से कर लेते है।

2 एक मनुष्य पाँच प्राणियो को मारने का विचार दिन मे 10 बार करता है, 20 दिन तक इस विचार को करता रहता है तो चाहे वह एक भी प्राणी को नही मारे किन्तु इस भावना से ही वह  $5 \times 10 \times 20 = 1000$  (एक हजार) प्राणियो की हत्या के पाप का भागी बन जाता है।





शुभ की अनुमोदना आत्मा के उत्थान का कारण बनती है, किन्तु अशुभ की अनुमोदना महापरिग्रह, महाआरभ, महाहिसा, महायुद्ध, कसाई खानो का खोलना, महाहिसक कारखानो आदि अशुभ कार्यो का अशुभ अनुमोदन प्राणियो के पतन का कारण बनता है। प्राणियो को दुख देने और उनकी हिंसा कराने वाले कार्यो की अनुमोदना से हमेशा बचना चाहिए। कुछ आदमी दूसरो को खुश करने के लिए बड़े-बड़े मकानो और हिंसात्मक कारखानो की योजनाओ का अनुमोदन करते है वे अपने अज्ञान के कारण अशुभ कर्मो का बध करते है।

## हत्या के पाप से अलग

पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो, पतित उधारण हारो।

गौ, ब्राह्मण, प्रमदा, बालक की मोटी हत्या चारो।

तेहनो करन हार प्रभु भजने, होत हत्या से न्यारो

पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो।

पाप पराल को पुज बन्धो अति, मानो मेरु आकारो।

सो तुम नाम हुतासन सेती सहजे प्रज्ज्वलत सारो।

पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो।

प्रभु के भजन से, सिद्धो के ध्यान से मुनि दृढ प्रहारी गाय, ब्राह्मण, स्त्री और बालक इन चारो की हत्या के पाप से न्यारा हो गया। सिद्धो के ध्यान मे ऐसी महान शक्ति है। मुनि दृढ प्रहारी अनुकूल के राग से और प्रतिकूल के द्वेष से अलग होकर सिद्धो के ध्यान मे लग गये और उन्होने पाँच महीने के अन्दर ही भूख-प्यास, शीत-ताप और लोगो से मिलने वाला दड-त्रास समतापूर्वक सहकर और सिद्धो के ध्यान मे लीन रहकर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

## सिद्धो का ध्यान

णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाण

णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाण

ऊपर लिखे हुए नवकार मंत्र के पद को मन-मन मे या धीमी-धीमी आवाज मे बोलकर बार-बार दोहराते हुए भक्ति और विनयपूर्वक हाथ जोडते हुए सिर झुकाते हुए और नमस्कार करते हुए सिद्धो का ध्यान किया जाता है।



ससार मे जितने भी तीर्थकर हुए है उन सबने सिद्ध पद पाया है। किन्तु वे अमूर्त होने के कारण देखे नहीं जा सकते। मैं उन सब सिद्धो को नमस्कार करता हूँ।

भेद—सिद्ध पन्द्रह प्रकार के होते हैं। तीर्थ सिद्धा, अतीर्थ सिद्धा, तीर्थकर सिद्धा, अतीर्थकर सिद्धा, स्वय बुद्ध सिद्धा, प्रत्येक बुद्ध सिद्धा, बुद्ध बोधि सिद्धा, स्त्रीलिंग सिद्धा, पुरुष लिंग सिद्धा, नपुसकलिंग सिद्धा, स्वलिंग सिद्धा, अन्य सिद्धा, गृहस्थलिंग सिद्धा, एक सिद्धा अनेक सिद्धा।

अन्यलिंग सिद्धा बताता है कि जैन धर्म मे पक्षपात नहीं है और यह द्रव्य क्रिया की अपेक्षा भाव क्रिया को प्रधानता देता है। अच्छी भावना भाने वाले अन्य धर्म के लोग भी सिद्ध भगवान बन सकते हैं। गृहस्थ सिद्धा सकेत करता है कि सिर्फ साधु ही सिद्ध नहीं बनते, किन्तु गृहस्थ भी भाव साधु बनकर सिद्ध भगवान बनते हैं। जैसे कूर्मा पुत्र केवली को भी गृहस्थ दशा मे केवलज्ञान प्राप्त हुआ था और वह छ महीने तक गृहस्थ पोशाक मे ही रहा इसलिए कि उनकी माता को दुख न हो। स्वय बुद्ध बतलाता है कि विशुद्ध आत्म चितन करने वाला और चौबीसो घटे आनन्दघन रहने वाला क्रोध, काम, मद, मोह छोड करके दूसरे उपदेशक से उपदेश पाए बिना भी केवल अपने-आप ज्ञाप प्राप्त करके सिद्ध बन सकता है।

आप ये चितन भी करिए कि इन सिद्धो ने अपने मनुष्य भव के जीवन मे अलग-अलग प्रमुखता दी। किसी ने दान को प्रमुखता दी, किसी ने शील को प्रमुखता दी—जैसे सेठ सुदर्शन, विजय सेठ, विजया सेठानी। किसी ने तप को प्रमुखता दी—जैसे मल्लिनाथ भगवान, काली रानी आदि। किसी ने समता भाव (क्षमा) को प्रमुखता दी—जैसे मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य। किसी ने अपने किए हुए पापो का पश्चात्ताप करके मुक्ति प्राप्त की। ऐसे सिद्धो का ध्यान करने से, उनके गुणो का अनुमोदन करने से आप उन्हे अपने जीवन मे उतारने की प्रेरणा पाएगे।

समस्या—कुछ लोग कहते है कि किसी पदार्थ या प्राणी का ध्यान करने के लिए उस पदार्थ या प्राणी को या उसके मूर्त रूप को, रग और अंग आदि को या उसकी तस्वीर को देखना आवश्यक है। इसके बिना उन पर दृष्टि जमाना और ध्यान को केन्द्रित करना कठिन है। सिद्ध भगवान अशरीरी है। उनका आत्म द्रव्य दिखाई नहीं देता। इसलिए सिद्धो का ध्यान करते समय हमारा मन इधर-उधर जाता रहता है और ध्यान केन्द्रित नहीं हो पाता।



के साथ बहुत समय तक रहा। उसे भी उनके दर्शन होते रहे किन्तु इन दर्शनो से उसके कर्मों का नाश नहीं हुआ। राजा श्रेणिक के साथ उसके सारथी ने भी भगवान महावीर और बहुत से सतों के दर्शन सिर्फ सभ्यता की मर्यादा निभाने के लिए भक्ति के बिना किए। जहाँ महाराज श्रेणिक के छ नारकीय कर्म नष्ट हुए वहाँ उनके सारथी के कुछ भी कर्म नष्ट नहीं हुए। उसे केवल काया कष्ट ही हुआ। केवल दर्शनो से ही भक्ति के बिना दर्शन करने वाले के कर्मों का नाश नहीं होता किन्तु उसके साथ जुड़ी हुई भावना, विनय भक्ति गुणानुराग आदि के कारण ही कर्मों की निर्जरा होती है। अतः ध्यान में महत्त्व इस बात का नहीं है कि हमें सिद्ध भगवान के कल्पित रूप के दर्शन होते हैं या नहीं। किन्तु महत्त्व इस बात का है कि हम सिद्ध भगवान के या जिन सतों या महापुरुषों के दर्शन करते हैं या नहीं या हमारे ऊँचे अचेतन मन में उनके गुणों के प्रति गुणानुराग है या नहीं।

यह भी सत्य है कि सिद्ध भगवान के आत्मद्रव्य को कल्पना के द्वारा देखने के प्रयास के बिना केवल उनके गुणों के चितन का अभ्यास कुछ दिनों तक किया जावे तो अरूपी सिद्धों के गुणों का चितन और ध्यान सम्भव हो सकेगा।

सिद्धों के ध्यान से हमारे अन्दर जो विकार हैं वे दूर होते हैं और हमें गुणों की प्राप्ति होती है। हमारे अशुभ कर्म, पाप रोग और दुःख नष्ट होते हैं और हमें सिद्ध पद की प्राप्ति होती है।

## सेवा के नौ भेद

किसी भी कार्य को अच्छे या बुरे परिणामों से अच्छा या बुरा नहीं कहा जा सकता। उसको अच्छा या बुरा बताने की कसौटी है—उस कार्यकर्ता के मन में परिणाम यानी भावना। इस दृष्टि से सेवा के नौ प्रकार हो सकते हैं। उसमें प्रथम तीन सेवाभावी उत्तम दूसरे तीन मध्यम और अन्तिम तीन अधम प्रकृति वाले कहे जा सकते हैं।

### 1 उत्तम (क) कर्तव्य भावना

कर्तव्य भावना से प्राणी मात्र की सेवा करने वाले सर्वोत्तम सेवाभावी कहे जा सकते हैं। उन्हें किसी प्रकार की इच्छा नहीं होती, कामना नहीं होती। वे ससार को सही मोक्ष का मार्ग दिखाते हैं। इस श्रेणी में तीर्थंकर और पूर्ण त्यागी महापुरुष आते हैं। यह कर्तव्य भावना ही सर्वोत्तम सेवा भावना है।



अहकार से अच्छी क्रियाओं का फल भी तुच्छ-सा बन जाता है। क्रोध के समान यह भी मनुष्य को ऊँचा नहीं उठने देता। यदि समाज के लिए दान देने वालों में यश प्राप्त की भावना मिट जाय और निस्वार्थ भाव से, निष्काम भाव से मान-अपमान और लाभ-हानि का ख्याल न रखकर, वे सेवाकार्य में लगे रहे तो वे मध्यम से निकल कर उत्तम श्रेणी में आ जाते हैं।

### (ग) लोभ अर्थात् धन लाभ

सम्पत्ति कमाने की भावना से सेवाकार्य करने वाले इस श्रेणी में आते हैं। वे चाहते हैं कि हम समाज सेवा के लिए कुछ धन लगावे और बड़े-बड़े राजकर्मचारियों और समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों की नजरों में ऊँचे हो जावे तो इससे हमें व्यापार का लाइसेंस मिल जावेगा या कारखाने के लिए सस्ते दामों में जमीन मिल जावेगी या सस्थाओं में कुछ चीजें विक्रय करने का ठेका मिल जावेगा और हम जितना सेवाकार्य में खर्च करेंगे उससे अधिक कमा लेंगे। उनकी भावना दान देने की नहीं किन्तु धन कमाने की रहती है। यह व्यापार है। सच्ची सेवा नहीं है। इसे सेवा नहीं माना जा सकता। क्रिया का फल उससे जुड़ी भावना के अनुसार मिलता है। क्रिया के परिणाम से नहीं। यदि ऐसे व्यक्ति दान देते समय धन कमाने की भावना नहीं रखे तो वे मध्यम से उत्तम सेवाभावियों की श्रेणी में आ जाते हैं।

### 3 अधम (क) दुष्ट प्रकृति

जो व्यक्ति सस्था या समाज में फूट डलवाने की भावना से काम करते हैं और फूट डलवा देते हैं, वे अधम श्रेणी की सेवा करने वाले सेवाभावियों में आते हैं।

### (ख) बदला लेने की भावना

जो व्यक्ति दूसरों से बदला लेने की भावना से किसी व्यक्ति या समाज की सेवा करता है तो वह भी अधम प्रकृति का व्यक्ति है।

### (ग) स्वभाव

जो व्यक्ति समाज को लूटने या डुबाने की भावना से काम करते हैं वे भी इसी अधम श्रेणी में आते हैं।

निष्कर्ष—हमारा ज्ञान बहुत सीमित है। हम दूसरों के अन्तःकरण को देख नहीं सकते। इसीलिए किसी व्यक्ति को किसी श्रेणी में रखना भयकर भूल है और यह अशुभ कर्म बंध का कारण बन जाता है। अतः आप विचारिये कि आप स्वयं किसी श्रेणी में हैं और किन दुर्भावनाओं को छोड़कर





इसमें से कुछ लोग अपने पुराने जन्मों के कर्जों को चुकाने के लिए या वसूल करने के लिए जन्म लेकर या विवाह सबंध जोड़कर एक परिवार में आते हैं। अतः परिवार वालों का कर्ज चुकाना अपना कर्तव्य है। इसे यह कहना कि मैं परिवार की सेवा कर रहा हूँ भूल है। यह सेवा नहीं है। इसे हम सेवा कहते हैं लेकिन यह तो सिर्फ ऋणमुक्ति है। कर्मों के विधान के अनुसार हम इससे बच नहीं सकते। इसमें कोई रियायत भी नहीं हो सकती। पिछले जन्मों का कर्ज शत-प्रतिशत माप, तोल और गिनकर पूरा का पूरा चुकाना पड़ता है। यह कर्ज कर्म अवधि पक जाने पर, कर्मोदय होने पर, कर्ज की देय तिथि आने पर चुकाना पड़ता है। इसे जो व्यक्ति हस-हस कर चुकाता है वह इस कर्ज से मुक्त हो जाता है और जो हस-हस कर नहीं चुकाता उसे यह कर्ज रो-रो कर चुकाना पड़ता है। इस हालत में जो व्यक्ति इसे सेवा कहता है वह उसकी भूल है क्योंकि सेवा इच्छा से की जाती है रो-रो कर नहीं।

जो व्यक्ति यह समझते हैं कि ये मेरे भाई हैं, ये मेरी बहिनें हैं, ये मेरे माता-पिता हैं या ये मेरे पुत्र-पुत्री हैं, वह झूठे परिवार के मोह में फँसता है। इसे कोई परिवार भले ही समझे किन्तु यह परिवार जैसी बात नहीं है। यह तो पिछले जन्मों के कर्जों को चुकाने व वसूल करने वाले हैं।

कुछ लोग सोचते हैं कि मैं परिवार की या समजा की या गरीबों की बहुत सेवा करता हूँ। ऐसे समय में उसे अहंकार न करते हुए यह सोचना चाहिए कि यदि मैं निस्वार्थ भाव से सेवाकृति में लगा रहा तो मेरे विशेष कर्मों की निर्जरा होगी, जिससे पूर्वकृत अशुभ कर्म टूटेंगे। नये शुभ कर्मों का बंध होगा।

समझदार लोग इस ऋण मुक्ति कार्य को इस भावना से इसे अनुकम्पा के कार्य में बदल देते हैं कि ये परिवार वाले, समजा वाले और दूसरे लोग आत्माएँ हैं। मेरा कर्तव्य है कि मैं सावधानी रखूँ कि इन आत्माओं को दुःख न हो, कष्ट न हो, इनको असाता न पहुँचे, इनका पतन नहीं हो किन्तु इनका भला हो, इनको सुख पहुँचे और इसके साथ-साथ इनकी आत्मोन्नति हो। उत्कृष्ट सेवाभावना से तीर्थकर नाम गोत्र कर्म का बंध होता है, ऐसा भगवान् महावीर ने फरमाया है।

नोट—दूसरों से सेवा कराना कर्जदार बनना है। अतः जहाँ तक सम्भव हो अपना कार्य स्वयं करना चाहिए।

## समता राखोजी

क्रोध महा चण्डाल, समता धारो जी॥  
दुख अपने कर्मो से आता  
दुख आकर कर्मो को धोता  
समता रखने से सुख होता  
तिर गये गजसुकुमाल, समता धारो जी॥  
क्रोध महा चण्डाल, समता धारो जी॥  
क्रोधी मर कर साप बनेगा  
पाप कर्म वो अधिक करेगा  
ऊपर से फिर दंड मिलेगा  
क्रोध महा चण्डाल, समता धारो जी॥  
गुरु नाना की सीख यही है  
समता राखे बडा वही है  
बदला ले वो बडा नही है  
क्रोध करे वो बडा नही है  
क्रोध महा चण्डाल, समता धारो जी॥

## संकल्प की कविता

सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा।  
निश्चय ही मैं सिद्ध बनूगा॥  
समता रखकर कर्म काटकर।  
सिद्धो का पद प्राप्त करूंगा॥  
सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा।  
निश्चय ही मैं सिद्ध बनूगा॥  
सिद्धो का ही ध्यान धरूंगा।  
सिद्धो का गुणगान करूंगा॥  
सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा।  
निश्चय ही मैं सिद्ध बनूगा॥  
काम क्रोध, मद, मोह छोडकर।  
आनन्दघन और अभय बनूगा॥  
सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा।  
निश्चय ही मैं सिद्ध बनूगा॥

## शीलव्रत का पालन

जैनागमो मे शील पालन को बडा महत्त्व दिया है। शील पालन से विजय सेठ, विजया सेठानी ने और सेठ सुदर्शन ने सिद्ध पद प्राप्त किया। जैन साधु-साध्वी, के लिए तो बडे कठोर नियम बनाये गये हैं। जैन साधु किसी साध्वी, स्त्री या एक माह की लडकी से वस्त्रो द्वारा स्पर्श होने से भी बचता है। इसी प्रकार जैन साध्वी किसी साधु, पुरुष या एक माह के बालक के वस्त्रो द्वारा स्पर्श होने से भी बचती है। यदि भूल से या असावधानी से वस्त्रो द्वारा भी स्पर्श हो जाता है तो उन्हें दड प्रायश्चित्त लेना पडता है।

यह शरीर से द्रव्य शील पालन हुआ। मन से भाव शील पालन मे पुरुष वृद्ध पर-स्त्री को माता, छोटी बालिका को पुत्री अपने समान उम्र वाली स्त्री को बहन के समान समझे। इसी प्रकार स्त्रियाँ वृद्ध पर-पुरुष को पिता, छोटे बालको को पुत्र और अपने समान उम्र वाले पुरुषो को भाई के समान समझे। यह पिता-पुत्र, भाई की भावना और माता-पुत्री, और बहिन की भावना पुरुष और स्त्रियो को शील पालने मे बहुत सहायक होती है। अत ये मेरे पिता-पुत्र भाई है या मेरी मात-पुत्री बहिने है इस भावना को बार-बार दोहराने से, इसका बार-बार चितन-मनन करने से और इसका जप करने से ये भावनाएँ अचेतन मन मे बैठ कर साधको को दृढ शीलव्रतधारी बना सकती है। शील पालन के लिए कोई भी स्त्री किसी पर-पुरुष के और कोई भी पुरुष किसी पर-स्त्री के शरीर, चेहरे और विशेष कर उसकी आँखो की ओर और उनके 1 चित्रो को नही देखे, नही देखे, नही देखे। 2 उनके पास नही बैठे। 3 नही ठहरे। 4 जरुरी कार्य के बिना उनके पास नही रहे। 5 उनसे अनावश्यक बाते या हँसी-मजाक नही करे। 6 एकात मे उसके साथ नही ठहरे। 7 जब कभी उनसे मिलने का मौका पडे तो माता-पुत्री बहिन की भावना या पिता-पुत्र भाई की भावना को रटते रहे या, 8 विजय सेठ, विजया सेठानी की शीलपालन की घटना को याद करते रहे। 9 उत्तेजक पदार्थो के सेवन और शृगार से बचकर सादा जीवन शील पालन मे बडा सहायक है।

## पश्चात्ताप की विधि

अपने पूर्वकृत पापो का पश्चात्ताप तीन चरणो मे किया जा सकता है। प्रथम चरण मे—1 घटना की स्मृति एव मन मे खेद, 2 अपना दोष देखना, 3 भगवान से सुबुद्धि की प्रार्थना।



या एक उपवास तप करूंगा। यदि सम्भव हो तो धर्मगुरु या श्री आचार्य भगवन् को घटना बताकर दंड प्रायश्चित्त लूंगा।

तृतीय चरण भविष्य में सावधानी रखना—

1 भविष्य में मैं पूरी सावधानी रखूंगा कि मुझसे ऐसा काम न हो।

2 यदि मुझसे कभी ऐसा अपराध होगा तो मैं इस पाप को नष्ट करने या हल्का करने के लिए दुगुना प्रायश्चित्त लूंगा।

3 इस अवगुण को दूर करने के लिए मैं मुनिश्री गजसुकुमाल, मुनिश्री मैतार्य, मुनिश्री अर्जुनमाली आदि की समताओं की घटनाओं का प्रतिदिन स्वाध्याय करूंगा।

ऊपर नमूने का एक उदाहरण दिया गया है। पश्चात्ताप करने वाला व्यक्ति अपनी सुविधा के अनुसार इसे घटा-बढा या बदल सकता है।

स्वाध्याय के सूत्र

इन सूत्रों को आप प्रतिदिन बार-बार दोहराइये और इनके अर्थ पर चिंतन करिये जिससे ये अवचेतन मन में बैठ सकें और स्थिर भावनाएँ बन सकें।

1 सेवा—परिवार के लोगों को मेरा भाई है, ऐसा नहीं समझकर यह केवल आत्मा है, ऐसा मानकर अनुकम्पा भाव से उनकी सम्यक् सेवा करनी चाहिए।

2 दंड—किसी को इसके अपराध के लिए दंड देने का अधिकार मुझे नहीं अपितु कर्मों को है।

3 क्रोध—दुःख अपने अशुभ कर्मों से मिलता है, उसमें निमित्त बनने वाले को दोष क्यों दूँ? उस पर क्रोध क्यों करूँ, उससे लडाईं क्यों करूँ? वह तो मेरे कर्मरोग काटने की अचूक दवा देने वाला मित्र है। उपकारी डॉक्टर है। परमात्मा उसका भला करे।

4 दुःख—(क) दुःख मुझे अशुभ कर्मों से मिलता है। समता रखने से यह मेरे कर्मरोग काटने की दवा बन जाएगा। इस दवा को दुःख मानना और रोना भूल है, पाप है। (ख) दुःख कर्मों की निर्जरा कराता है, अज्ञान को हटाता है। मोह को हटाता है और धर्म में श्रद्धा पैदा कराता है। यह उपकारी शिक्षक है।



12 माया—सत्य व्रतधारी अर्थात् मन, वचन, काया की सरलता वाला देवताओं से सहायता पाता है और वह मोक्ष या स्वर्ग पा सकता है।

13 शील—परस्त्री (मेरी) माता या पुत्री या बहनो के समान है।  
(ख) उसके अवगुण नष्ट होते हैं और गुण प्रकट होते हैं।

14 गुण दर्शन—दूसरो मे गुणो को देखने वाले का अहकार दूर होता है और उसमे विनय भाव पैदा होता है।

15 देह—आत्मभेद ज्ञान या आत्मा भावना यह शरीर अलग है और मैं (आत्मा) अलग हूँ। शरीर का सुख-दुःख मेरा (आत्मा) का सुख-दुःख नहीं है। इस सूत्र को बार-बार जपने से इस भावना के अचेतन मन मे बैठ जाने से दुःखानुभूति मिट सकती है।

16 सिद्धो का ध्यान—“णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाण।

## देहासक्ति से मुक्ति

सिद्ध पद प्राप्त करने के लिए सब कर्मों की निर्जरा आवश्यक है और सब कर्मों की निर्जरा तभी सम्भव है जब देह की आसक्ति छूट जाये और काया-कष्ट, समताभाव से सहन किया जा सके। ऐसी सहन-शक्ति दो प्रकार से प्राप्त होती है—1 अभ्यास से और 2 भावना से।

1 सहन-शक्ति प्राप्त करने के लिए नवकार मंत्र से पोरसी, एकत, उपवास, आयबिल आदि तप किया जा सकता है। 2 अपने सभी काम अपने हाथ से करके स्वावलंबी बना जा सकता है। 3 जो काम अपने शरीर से हो सके, उसके लिए मशीनो का प्रयोग कम से कम किया जाये। 4 शीत ताप, भूख-प्यास, मक्खी-मच्छर आदि के उपद्रव समताभाव से सहन किया जाये। 5 घर के सभी कार्यों मे परिवार की सहायता श्रम पूर्वक कष्ट अनुभव किए बिना की जाए। रोग आदि मे कष्ट को समताभाव से सहा जाए। और 6 उपसर्गों व कष्टो को समतापूर्वक सहन किया जाए।

सहनशक्ति बढ़ाने का दूसरा और प्रभावशाली उपाय है—भावना द्वारा देह की आसक्ति को तोडना और सहनशक्ति बढ़ाना। इसके लिए स्वाध्याय किया जा सकता है। इसके लिए सूत्र इस प्रकार है—

1 शरीर अलग है और मैं (आत्मा) अलग हूँ।

2 शरीर मेरा नहीं है। यह नाशवान है।

3 उपसर्ग और काया कष्ट समताभाव से सहन करने से देहासक्ति टूट जाती है।





## कषाय - मुक्ति चौथा भाग

### आदर्श सेठ

प्राचीन काल में दिल्ली नगर में धर्मदास नाम का सेठ रहता था। उसके चार पुत्र थे। जब वह बूढ़ा हुआ तो उसने कुछ धन अपने पुत्रों में बाँट दिया और कुछ धन अपने पास रख लिया। जब वह किसी व्यक्ति को आर्थिक दृष्टि से कमजोर देखता तो वह गुप्त रूप से पाँच हजार रुपये दे देता और उसे ईमानदारी से व्यापार करने को कहता। इस प्रकार उसने बहुत से लोगों के जीवन निर्वाह और आत्म उत्थान में सहयोग दिया।

जब वह बीमार हुआ तो जिन लोगों की धर्मदास ने मदद की, उनमें से कुछ लोग रुपये लौटाने के विचार से आए तो सेठ धर्मदास ने उनकी बातें सुनकर उनसे कहा—“भाई साहब यदि आप अपने ऊपर मेरा एहसान मानते हैं तो मेरी एक बात मानिये। यह रुपये आप मुझे न देकर धरोहर के रूप में अपने पास रखिए और गुप्त रूप से जितने व्यक्तियों की सहायता कर सकें, करें। यही मेरी सच्ची सेवा है और सच्चा धर्म है।”

आये हुए सभी लोगों ने यह प्रण किया कि आपके बताए हुए आदर्श मार्ग पर चलकर हम दूसरों के जीवन निर्वाह, ज्ञान प्राप्ति और आत्मोन्नति में निमित्त बनने की पूर कोशिश करेंगे।

यह सुनकर सेठ धर्मदास ने एक गहरी सास ली और बोले—मैंने देखा है जिस घर में गरीबी और भूखमरी आ जाती है वह घर लड़ाई-झगड़े का घर बन जाता है, उसमें मारपीट होने लगती है। यहाँ तक कि आत्महत्या या दूसरों की हत्या तक क्रोध में कर दी जाती है। वह घर हिंसा का घर बन जाता है और सबके भारी कर्म बधते हैं। ऐसे घर को गुप्त रूप से मदद देने वाला, उस घर को स्वर्ग और धर्मस्थानक-सा बनाने में निमित्त बन कर स्वयं भी महापुण्य का भागी बनता है। गुप्तदान ससार में एक महान सेवा तप है।



उसने ऐसा बर्ताव किया है, इस वक्त मैं यदि समभाव रखूंगा तो मेरे कर्मों का नाश होगा, ऐसा ही हुआ। उन्होंने समस्त कर्मों का नाश कर मुक्ति पा ली।

किया स्वयं का स्वयं ही पाता।  
क्रोध दुःख मन में क्यों आता।।

## दृढ प्रहारी

कभी-कभी महाहिंसा करने वाले प्राणी भी अपने पूर्वजन्म में किए हुए अच्छे कर्म के प्रभाव से अचानक उसी जन्म में मोक्ष पहुँचने वाले मुनि बन जाते हैं। यही बात दृढ प्रहारी के साथ घटी। वह अचानक ही चोर और हत्यारे दृढ प्रहारी से समीक्षण ध्यानी मुनि दृढ प्रहारी बन गए। दृढ प्रहारी एक अच्छे घर में उत्पन्न हुए थे। वे अपने माता-पिता के साथ कभी-कभी साधु-साधवियों के दर्शन करने और उनके प्रवचन सुनने भी जाते थे। किन्तु कुसगति के कारण वे शराब पीने, चोरी करने लगे और विरोध करने वाले की हत्या कर देते थे। इस कारण घर से निकाल दिए गए। उसके बाद वे चोर-डाकू बन गए। एक दिन वे डाका डालने के लिए एक ब्राह्मण के घर गए। घर में एक गाय खुली थी। वह रम्भाने (रिक्ने) लगी। दृढ प्रहारी ने सोचा कि लोग जग जायेंगे, तो उसने एक ही चोट में उसके सिर को धड़ से जुदा कर दिया। इसी समय बाहर से ब्राह्मण आया। पकड़े जाने के भय से दृढ प्रहारी ने उसे भी मार दिया। उसके बाद दृढ प्रहारी अन्दर गया, तब ब्राह्मणी ने कहा—“तूने मेरी गाय को मार दिया, तूने मेरे पति को मार दिया, अब तू मुझे क्यों जिन्दा छोड़ता है। मैं क्या खाऊंगी, मैं किसके सहारे रहूंगी ?” तब दृढ प्रहारी ने सोचा कि कहीं यह शोर न मचा दे। इसलिए उसने उसे भी मार दिया। सगर्भा ब्राह्मणी तो मर गई परन्तु तलवार के साथ गर्भस्थ बालक टुकड़े-टुकड़े होकर बाहर निकलकर गिर गया। इस हत्या को देखकर दृढ प्रहारी का हृदय काप उठा। तलवार उसके हाथ से छूट गयी। वह विचारने लगा—“हाय-हाय ! मैंने चार हत्याएँ कर डाली। मैंने पहले भी बहुत हत्याएँ की हैं, अनेक बच्चों को अनाथ किया है, महिलाओं को वैधव्य का दुःख दिया है, लोगों का धन लूट कर उन्हें दाने-दाने के लिए मोहताज बनाया है। मेरा इन पापों से छुटकारा कब और कैसे होगा ?”

दृढ प्रहारी ने पहले बहुत अच्छे कर्म किए होंगे। उन कर्मों के उदय से उसके विचार एकदम बदल गए और उसने हत्यारे दृढ प्रहारी से मुनि



रहा हूँ। ये मुझे हल्का-सा दड देने वाले, तो केवल निमित्त बने हैं। इन पर क्रोध क्यों करू ? मुझे यह जो हल्का काया-कष्ट मिल रहा है, वह भी तो मैंने स्वयं ने ही मोल लिया है। इससे तो मेरे कर्म कट रहे हैं फिर इसे दुःख क्यों माना जाए, समभाव से सारे कर्म कटते हैं—

किया स्वयं का, स्वयं ही पाता।

क्रोध दुःख मन में क्यों आता।।

मुनि अर्जुनमाली ने उपर्युक्त भावना का स्वाध्याय करीब छ महीने तक किया जिससे उनका क्रोध समूल नष्ट हो गया, दुःखानुभूति बिलकुल मिट गई और वे आनन्दघन बनकर सिद्ध बन गये। आनन्दघन का अर्थ है— जिसको आनन्द ही आनन्द हो, कोई दुःख न हो।

आत्मा हूँ मैं, देह भिन्न हूँ।

दुःखी नहीं मैं, आनन्दघन हूँ।।

### मृगा पुत्र (मृगा लोढा)

एक राजा था। उसका नाम विजयवर्द्धन था। वह बहुत बुद्धिमान और धर्मात्मा था। उसकी रानी मृगादेवी बहुत समझदार और धर्मात्मा थी। उनके एक पुत्र था। उसका नाम था मृगा पुत्र। उसके हाथ, पैर आँख, कान नहीं थे। वह एक गुप्त स्थान में पड़ा रहता था। वही पर वह खाता-पिता था। वही पर मल-मूत्र त्याग करता था। रानी उस कमरे की सफाई का पूरा ध्यान रखती थी। किन्तु फिर भी वहाँ इतनी बदबू आती थी कि उस कमरे में आने वाले को नाक पर कपड़ा रखना पड़ता था। राजा और रानी दोनों ही मृगापुत्र की इस दशा पर दुःखी थे। मृगापुत्र ने अपने पूर्व जन्मों में बड़े-बड़े पापों का सचय किया था, जिससे उसको ऐसा शरीर मिला जिसकी चिकित्सा होना संभव ही नहीं था।

भगवान महावीर के मुँह से मृगापुत्र का वृत्तान्त सुनकर गणधर गौतम स्वामी, महावीर भगवान की आज्ञा लेकर उसे देखने के लिए राजमहल में पधारे। राजा और रानी ने गौतम स्वामी को देखकर हाथ जोड़कर सिर झुका कर नमस्कार किया और उनसे निवेदन किया—“आज हमारे महाभाग्य है कि आपने पधार कर हमारा घर पवित्र किया। गौतम स्वामी ने मृगादेवी के पुत्रों को देखने की इच्छा प्रकट की तब मृगादेवी ने अपने स्वस्थ और सुन्दर पुत्रों को लाकर दिखाया, तब गौतम स्वामी ने कहा—“देवानुप्रिय ! मैं तुम्हारे उस पुत्र को देखना चाहता हूँ जिसका शरीर विकृत है। तब रानी उन्हें आदरपूर्वक उस गुप्त स्थान में ले गई जहाँ मृगापुत्र बैठा था। गौतम



बुलाया लेकिन वे भी कुछ न कर सके। उनके माता-पिता, भाई-बहिन भी दिन-रात उनके दर्द को दूर करने का उपाय करते रहे लेकिन वे भी कुछ न कर सके। उनकी पत्नी भी आँखों से आँसू बहाते हुए उनकी सेवा में लगी, लेकिन कोई भी आँखों का दर्द नहीं मिटा सका।

यह तो उनके पूर्वजन्म में किये हुए पाप का फल था जो अब उदय में आकर उनको दुःख दे रहा था। कोई भी प्राणी किसी दूसरे प्राणी के कर्म रोग को मिटाने की शक्ति नहीं रखता।

शक्ति है केवल निज कर्मों में।  
दुःख देने की पाप कर्म में।  
अशुभ कर्म जब उदय में आता।  
अन्य कोई सुख दे नहीं पाता।।

कर्मों के रोग धन से या किसी भी अन्य पुरुष से मिटाये नहीं जा सकते। यदि कोई एक पुरुष दूसरे पुरुष का रोग या दुःख दूर कर सकता तो आज ससार में एक भी प्राणी रोगी या दुःखी नहीं रहता। कर्मों का रोग, दान, शील, तप आदि बड़ी-बड़ी उत्कृष्ट भावनाओं और वैसी ही क्रियाओं से मिट सकता है। एक रात्रि के समय अनाथी मुनि ने गृहस्थ अवस्था में सकल्प किया—यदि मैं इस दुःख से छुटकारा पा लूँगा तो मैं दीक्षा लेकर पूर्ण समता रखकर परमात्मा पद पाने की कोशिश करूँगा।

सवेरे उनके नींद से जागने पर उनके परिवार वालों को बहुत आश्चर्य हुआ कि जो रोग दवाओं से नहीं गया, वह अचानक दूर कैसे हो गया तो उन्होंने जवाब दिया कि दुःख और रोग उत्कृष्ट भावना, धर्म की भावना और धर्म करने से दूर होता है, अब मैं दीक्षा लेकर अपनी आत्म-शुद्धि करूँगा।

उनके घर वालों ने उनको बहुत समझाया कि घर में रहकर कुछ दिन तक माता-पिता की सेवा करो लेकिन उन्होंने अपने माता-पिता से कहा कि कोई किसी का नाथ नहीं बन सकता और किसी का दुःख दूर नहीं कर सकता। प्राणी स्वयं ही अच्छे कर्म करके अपना नाथ बन सकता है। ससार में सब अलग-अलग है। कोई किसी का अपना हमेशा के लिए नहीं बन सकता क्योंकि अलग-अलग मनुष्यों के अलग-अलग कर्म होते हैं। वे कर्म उनको हमेशा साथ नहीं रहने देते। पुराने जन्मों का परस्पर लेन-देन समाप्त हो जाने पर उनके कर्म उनकी मृत्यु से पहले ही उन्हें अलग-अलग कर देते हैं और मृत्यु तो उनको अपना बनने ही नहीं देती।





क्रोधी स्वभाव के कारण आश्रमवासी उसे अकेला छोड़कर अन्यत्र चले गये। वह अकेला रहता था। एक बार एक राजकुमार ने उसे चिढ़ाया, जिससे वह चिढ़ कर उसे मारने के लिए दौड़ा। वह क्रोध में बेभान था और गड्डे में गिरकर मर गया।

क्रोध से मरण के कारण वह सर्प बन गया और जंगल में मार्ग के पास ही एक बिल में रहने लगा, जो कोई मनुष्य उस रास्ते से जाता उसे वह सर्प विष दृष्टि से देखता और उसके देखते ही व्यक्ति मर जाता। अतः उसका नाम भी चण्डकौशिक पड़ गया।

एक दिन भगवान महावीर उस चण्डकौशिक को समझाने के लिए जा रहे थे। लोगो ने उन्हें रोकना चाहा लेकिन वे रुके नहीं और जहाँ सर्प था वहाँ चले गये। चण्डकौशिक ने उन्हें विष दृष्टि से मारना चाहा, लेकिन इससे कुछ नहीं हुआ। तब सर्प ने उन्हें काटा। जब इसका भी कोई प्रभाव नहीं हुआ तब सर्प ने महावीर स्वामी को आश्चर्य से देखा।

भगवान महावीर ने कहा—“अरे चण्डकौशिक ! समझ कि तू पहले कौन था और अब तू कौन हो गया है और क्या करता है।” भगवान के इन वचनों को सुनकर चण्डकौशिक को ज्ञान हो गया और उसने सोचा कि इससे पूर्व जन्म में मैं एक साधु था किन्तु क्रोध के कारण मैं सर्प बन गया। मैंने अनेक मेढक, चूहो, पशुओ और मनुष्यो की हत्या की है। मैंने सर्प बन कर नरक ले जाने वाले पाप किये हैं। ये सच है कि क्रोध नरक ले जाने वाली सीढ़ी है। क्रोधी मनुष्य मरकर सर्प बन जाता है। क्रोध मनुष्य को भले बुरे काम की पहचान नहीं सीखाता। मेरे किसी पूर्व जन्म में किये हुए पुण्य से मुझे भगवान महावीर के दर्शन हुए और यह अपूर्व ज्ञान मिला। अब मैं पूर्ण समता रखकर अपने कर्मों को काटूंगा और अपना जीवन सुधारूंगा।

चण्डकौशिक ने अपना सिर बिल में रख लिया और शरीर बाहर रख लिया। लोगो ने उसे बिलकुल शांत देखकर यह समझा कि यह चण्डकौशिक देवता हो गया है। उन्होंने उस पर दूध और बताशे चढ़ाए जिससे चीटियाँ आकर उसके शरीर को काटने लगी। इस भयकर दर्द में भी चण्डकौशिक ने क्रोध न करके पूर्ण समता रखकर सहन किया जिससे उसके अनेक पाप कट गये।

सच है क्रोध से प्राणी के अच्छे-अच्छे गुण नष्ट हो जाते हैं और वह मुक्ति पाने का अधिकार खोने लगता है।



## कालसौकरीक कसाई

एक बार राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर से कहा—“मेरे पापो के नष्ट होने का कोई उपाय बताने की कृपा करे। भगवान महावीर ने कहा—“तुम कालसौकरीक कसाई से जो एक दिन में 500 भैसे मारता है, भैसों को एक दिन के लिए मारना बंद करवा दो तो तुम्हारे पाप कर्म नष्ट हो सकते हैं।” राजा श्रेणिक ने उस कसाई को बुलाया और कहा—“मेरे कहने से तुम एक दिन के लिए भैसों की हिंसा बंद कर दो तो मैं तुम्हें बहुत धन दूंगा।” कसाई ने कहा—“धन लेकर मैं अपने नियम को नहीं तोड़ सकता।” राजा श्रेणिक बहुत नाराज हुआ और उसने उसे एक जेल में बंद करवा दिया।

दूसरे दिन राजा श्रेणिक भगवान महावीर के पास गये और कहा—“भगवन् मैंने उस कसाई को भैसे मारने से रोक दिया।” यह सुनकर भगवान महावीर ने कहा—“महाराजा श्रेणिक, उस कसाई ने वैसे तो एक भी भैसा नहीं मारा किन्तु भावना से उसने 500 भैसे मार दिये और उसने 500 भैसे मारने का पाप कर लिया।” राजा वापस महलो में आया और कसाई से पूछा—“तुमने भैसे कैसे मारे ? कसाई ने उत्तर दिया—मैंने अपने शरीर का मैल उतार कर उसकी भैसे की आकृति बनाकर नाखून को छूरी समझकर उसे काट दिया। इस तरह 500 बार करके 500 भैसे मारने का कार्य कर लिया।

हम चाहे एक भी जीव के शरीर को नहीं छुएँ, वह चाहे हमसे हजारों किलोमीटर दूर सुरक्षित और सुखपूर्वक बैठा रहे किन्तु हम अपने घर पर बैठे हुए ही विचारों द्वारा, कल्पना द्वारा या भावना द्वारा किसी मिट्टी के ढेले को या गोबर के टुकड़े को या गूदे हुए आटे के टुकड़े को या किसी कपड़े को या कागज को या लकड़ी की गुड़िया बनाकर या किसी भी प्राणी को या वस्तु को जीवित प्राणी मानकर काट दे, मार दे, या जला दे तो यह भाव हिंसा कहलाती है। भाव हिंसा से सचमुच में जीव तो एक भी नहीं मरता किन्तु मारने का पाप लग जाता है। “मैं दस आदमियों को मारूंगा” ऐसा विचार भाव हिंसा है और इससे 10 आदमियों को मारने का पाप लग जाता है। ऐसे ही बड़े कामों की इच्छा करने वाले या बड़ी-बड़ी हिंसक योजनाएँ बनाने वाले भी चाहे कुछ न करे वे पाप के भागी तो बन ही जाते हैं। जो मनुष्य विचार करता है कि यदि मेरे पास एटम बम या अणु बम हो तो मैं शत्रु के नगरों को और शत्रु की सेना को मार दूंगा, ऐसा विचार करने वाला किसी को नहीं मारता किन्तु भावना के कारण वह भी दुर्गति में चला जाता है।

## बाहुबलीजी और अहम् भाव

बाहुबलीजी ने दीक्षा ले ली किन्तु वे भगवान आदिनाथ के पास न गये क्योंकि उनके छोटे भाइयों ने उनसे पहले दीक्षा ले ली थी और दशैं से बाहुबलीजी को अपने छोटे भाइयों को जो दीक्षा में उनसे बड़े नमस्कार करना पड़ता। बाहुबलीजी इस प्रकार एक वर्ष तक वन में रहे। वे तपस्या करते रहे किन्तु अहंकार के कारण उनको केवलज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। एक दिन उनके कानों में एक गीत सुनाई दिया—

वीरा मोरा गजथकी उतरो  
गज चढ्यो केवल ना होसी रे।  
बाधव गज थकी उतरो।

उन्होंने आवाज पहचान ली। यह आवाज उनकी साध्वी बहिनी तथा सुन्दरी की थी। उन्होंने विचार किया—“मैं तो जमीन पर खड़ा हूँ हवा पर नहीं चढ़ा हुआ हूँ फिर मैं किस हाथी से नीचे उतरूँ।” फिर उन समझ में आया कि मैं अहंकार रूपी हाथी पर चढ़ा हुआ हूँ। इसी अहंकार के कारण इतनी लम्बी और कठोर एक वर्ष की तपस्या होने पर केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई। उन्होंने विचार किया कि अब मैं अहंकार छोड़ूंगा और भगवान ऋषभदेव के पास जाकर सभी सतों को दान करूंगा। ज्योंही उन्होंने वदना करने को जाने के लिए पैर उठाया तब उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। अहंकार से केवलज्ञान नहीं हो सकता केवलज्ञान विनय से प्राप्त होता है।

## बच्चों की शिक्षा

प्राचीन काल में मदालसा नाम की एक महासती थी। उसने इस संसार पर विवाह किया था कि मैं पुत्रों को जैसा चाहूंगी वैसा ही बनाऊंगी।

जब बच्चा सती मदालसा के गर्भ में रहता था तब वह सती प्रवचन सुनती, धार्मिक बातों का चिन्तन-मनन करती। धार्मिक भजन गानों इसका सीधा प्रभाव गर्भ के बच्चे पर पड़ता। जब लडका हो जाता तो दासी को नहीं सौंपती किन्तु स्वयं ही उनकी पूरी देख-भाल करती। उनका झूला झुलाते हुए वैराग्य भरी लोरियाँ सुनाती। वह कहती—

सिद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरजनोऽसि।  
संसार माया परिवार्जितोऽसि।।

इन गीतों का छोटे बच्चे के मन पर ऐसा प्रभाव पड़ता कि वह

होकर साधु बन जाता। इस प्रकार उसके लडके साधु बन गए। जब सातवा लडका गर्भ में आया तो राजा ने कहा—“महारानी छह बच्चे तो साधु हो गए इसे तो राजा बनाओ नहीं तो राज्य कौन संभालेगा।” तब उसने इस बच्चे को गर्भ से ही राजनीति और वीरता की बातें सिखाईं। अतः यह सातवा पुत्र पिता की तरह ही बड़ा प्रतापी, सुखी और प्रसिद्ध राजा हुआ।

अभिमन्यु भी जब वह माता के गर्भ में था तभी चक्रव्यूह भेदना सीख गया।

बच्चों की शिक्षा उनके बचपन से पहले ही शैशव काल के पहले ही और जन्म के पहले ही उनके माता-पिता की शिक्षा और सुसंस्कृति से दी जाती है।

### पापी कौन धर्मी कौन

एक दिन धर्म की सभा में बहुत से आदमी बैठे थे। उस समय एक आदमी ने धर्म गुरु से पूछा—“गुरुदेव विलायत में रोबिन हुड नाम का एक डाकू हुआ था जो अमीरों को लूटता था तथा गरीबों को धन देता था। मैं भी ऊपर से साहूकार दिखाई देता हुआ व्यापार में अन्याय से, मिलावट से चोरी करके धनिकों को लूटकर गरीबों की मदद करता हूँ और आपकी धर्म सभा में भी दान देता हूँ। मुझे बताने की कृपा करें कि मुझे धर्म अधिक हुआ या पाप ?

गुरुदेव ने उत्तर दिया—“धर्म और पाप कम या अधिक होना तो भगवान ही बता सकते हैं क्योंकि यह बात कुछ तो मनुष्य की भावनाओं पर और कुछ सारी परिस्थितियों पर निर्भर करती है किन्तु आप यह बताये कि एक मनुष्य मल-मूत्र के नाले में बार-बार हाथ डालता है और बार-बार उन्हे धोता है तो उसे आप अच्छा कहेंगे या बुरा। यदि धन कमाकर और उसे दान देने में अधिक धर्म होता तो लोग धन देने वाले से साधु को ज्यादा श्रेष्ठ क्यों समझते। दान देने वाले को प्रथम तो यह पता नहीं चलता कि दान लेने वाला सच्चा गरीब है या दिखावटी गरीब है। दूसरा यह भी पता नहीं चलता कि वह धन का उपयोग किस रूप में करेगा। यह तो साफ है कि लूटना तो पाप है और महापाप है। भावना शुद्ध है और क्रिया गलत है तो कायिक पाप तो होगा ही। मन, वचन और काया तीनों शुद्ध हैं तो धर्म होगा और अगर इन तीनों में से कुछ भी गलत है तो पाप तो लगेगा ही। अतः वकील, डॉक्टर, अध्यापक आदि कोई भी अगर हो सके तो बिना फीस लिए मदद करेगा तो उसे बहुत धर्म होगा।



1 मुझे दुख देने की मूल भौतिक शक्ति केवल मेरे ही अशुभ कर्मों में है। निमित्त शत्रु पर क्रोध क्यों किया जाय।

2 परिवार के किसी सदस्य के साथ मेरे पूर्व जन्म के वैर के कारण यदि मेरे अशुभ कर्म उससे मुझे दुख दिलावे या जहर पिलावे तो भी उस निमित्त पर मुझे क्रोध नहीं करना चाहिए। जैसे कि मुनि उदाई ने, भक्त मीराबाई ने, कृष्णाकुमारी ने जहर पिलाने वालों पर भी क्रोध नहीं किया।

3 परिवार का कोई भी सदस्य मेरे अशुभ कर्मों को शुभ कर्मों में और दुख को सुख में नहीं बदल सकता। परिवार की शक्ति सीमित है।

4 मुझे मेरे शुभ कर्मों से परिवार के द्वारा जो सुख मिलता है उसको अधिक बढ़ाने की शक्ति परिवार में नहीं है।

5 अन्तराय कर्म के उदय के समय मेरे अन्तराय कर्म को तोड़कर मुझे सुख देने की शक्ति परिवार में नहीं है।

6 मैं परिवार के अशुभ कर्मों को शुभ कर्मों में नहीं बदल सकता अतः मेरा परिवार के लिए चिंता, मोह करना व्यर्थ है। भौतिक सुख दुख देने की भौतिक शक्ति केवल प्राणी के स्वयं के कर्मों में ही है। परिवार तो केवल निमित्त ही बनता है।

7 मनुष्य के शुभ कर्मोदय के समय कम बुद्धि वाले को भी सफलता मिल जाती है किन्तु अशुभ कर्मोदय के समय, विनाश काल के समय बड़े-बड़े बुद्धिमान मनुष्यों को स्वयं की बुद्धि भी उनका साथ नहीं देती है। बुद्धि का अहंकार करना भूल है। अपनी बुद्धि अहंकार छोड़कर विनयपूर्वक बड़ों से राय लेना ही बुद्धिमानी है।

8 प्रथम इच्छा शोधन और अन्त में इच्छा निरोध यही मोक्ष का मार्ग है।

अशुभ कर्म से है दुख आया।  
क्रोध न कर, कर कर्म सफाया।।  
कर्म कुटुम्ब के बदल न सकता।  
चिंता मोह मैं व्यर्थ ही करता।।  
भौतिक शक्ति है, निज कर्मों में।  
सुख देने की शुभ कर्मों में।।  
दुख देने की पाप कर्म में।  
बुद्धि वैसी ही बन जाती।।  
जैसी कर्मों की गति चाहती।।





## सत्यवादी हरिशचन्द्र

एक बार स्वर्ग लोक की अप्सराएँ पृथ्वी पर आकर मुनि विश्वामित्र के आश्रम में खेलने लगी, जिससे उनके आश्रम की वाटिका में फूलों के पेड़ और लताएँ क्षत-विक्षित हो गयीं। जब मुनि विश्वामित्र वहाँ आए तो उन्हें बहुत क्रोध आया और उन्होंने अप्सराओं को तप बल से लताओं से बाँध दिया। इस पर अप्सराएँ चिल्लाने लगी—“हमें बचाओ, हमें बचाओ।” उसी समय सयोग से महाराज हरिशचन्द्र का उधर आना हो गया। जब उन्होंने यह पुकार सुनी तो उन्होंने वहाँ आकर अपने सत्यबल की शक्ति से अप्सराओं को बंधन मुक्त कर दिया। तपस्वी में देवताओं से अधिक शक्ति होती है और तपस्वी से भी अधिक शक्ति सत्यवादी में होती है। सत्य महातप है, महाव्रत है, इससे मनुष्य को महाशक्ति प्राप्त होती है। सत्यवादी को देवता भी नमस्कार और प्यार करते हैं और उस प्राणी के प्रार्थना किए बिना भी उसकी सहायता करते हैं।

सच बोलूंगा, सच बोलूंगा।

निश्चय ही मैं सत्य बोलूंगा।।

सुख आवे या दुःख आवे मैं।

झूठ कभी नहीं बोलूंगा।।

## दुर्भावना से बचिए

बड़े लोगों की बात अलग है किन्तु साधारण लोगों में अशुभ कर्म बंधन का एक बड़ा कारण है दुर्भावना का होना। दुर्भावना में भी दो मुख्य बातें हैं। प्रथम दूसरों के पतन पर या दूसरों के दुःख होने पर हमारे मन में हल्की-सी खुशी का होना। दूसरी बात है दूसरों को दुःख पहुँचाने की भावना। इन दो बातों को मिटाने का एक ही उपाय है कि “सबका भला हो, सबका भला हो” हम इस भावना का प्रतिदिन काफी समय तक चार छ महीनों तक स्वाध्याय करें अर्थात् इसका जप चिंतन-मनन करें।

इस उपाय से प्राणी बहुत से अशुभ कर्म बंधन से बच सकेगा।

सबका भला हो, “सबका भला हो” इसके स्वाध्याय से दुर्भावना आनी बंद हो जाएगी।



बनना पडा हो। जैसे-भगवान् महावीर को सगमदेव ने उपसर्ग (कष्ट) दिए थे। तीर्थंकर महावीर ने इसका बदला नहीं लिया तो सगमदेव को दंड देने के लिए इन्द्रदेव को निमित्त बनना पडा। इसी प्रकार जिससे आपको दुःख मिल रहा हो, उस व्यक्ति को शायद दूसरे के बदले में निमित्त बनना पडा हो। इसलिए दंड में निमित्त बनने वाले को शत्रु मानना भूल है।

निमित्त को उपकारी मानने से प्रथम तो निमित्त पर क्रोध नहीं आता, रौद्रध्यान नहीं बनता, बदला लेने की दुर्भावना नहीं बनती, वैर नहीं बधता और अशुभ कर्म नहीं बधते। दूसरे, उपकारी मानने से दुःख नहीं होता, आर्तध्यान नहीं बनता, नये अशुभ कर्म नहीं बधते। तीसरे, समताभावी बनने में बहुत सहायता मिलती है, जिससे बहुत से अशुभ कर्म कट जाते हैं।

निमित्त द्वारा दुःख मिलने से बहुत से लोगो को अप्रत्यक्ष रूप से कभी-कभी लाभ भी होता है। जैसे-1 भीम को कौरवों द्वारा जहर पिलाकर बेहोशी की दशा में नदी में बहा दिया गया। भीम को खिलाया गया जहर उसको सर्पों के काटने से दूर हो गया और उसे वहाँ वल्लरी का रस पीने को मिला जिससे उसमें हजार हाथियों का बल आ गया। 2 प्रद्युम्नकुमार का उसके जन्म होते ही एक शत्रुदेव द्वारा हरण कर लिया गया। उसे पहाड़ों में एक पत्थर के नीचे दबाकर छोड़ दिया गया। किन्तु पुण्यशाली प्रद्युम्नकुमार पर एक विद्याधर की दृष्टि पड़ी। वह उन्हें अपने साथ ले गया और वहाँ पर प्रद्युम्नकुमार को अनेक विद्याओं की प्राप्ति हुई। राजा नल को जुए में राज्य हारने के बाद वन में भटकते हुए एक तक्षक द्वारा काट लिया गया जिससे उसके भाई कुबेर द्वारा उसके पकड़े जाने और मारे जाने का खतरा दूर हो गया। कुछ वर्षों के बाद शुभ कर्मों के उदय से उसे राज्य की प्राप्ति हो गई।

साराश या स्वाध्याय सूत्र-कर्मों की गति बड़ी विचित्र होती है। कभी-कभी शत्रु द्वारा दिया गया दुःख भी मनुष्य की आत्मा का बहुत हित कर देता है। अतः निमित्त को शत्रु नहीं मानकर अपना मित्र समझना चाहिए।

### क्रोध (शत्रु भावना)

1 बुरा अपने अशुभ कर्मों से होता है। निमित्त को शत्रु मानकर उस पर क्रोध करना भविष्य के लिए शत्रुता की परम्परा को चालू रखने के सिवाय और कुछ नहीं है। 2 यदि हमारे अशुभ कर्मों का उदय हो तो शत्रु या किसी प्राणी के निमित्त बने बिना भी हमारा बुरा हो सकता है।



अहकार करना भूल है। 11 मनुष्य जब बहुत वृद्ध हो जाता है और उसके हाथ पैर काम नहीं देते तब उसे अनुभव होता है कि अहकार करना भूल है। 12 सारी शक्ति कर्मों के हाथ में है। अतः अपने शरीर का, धन का, परिवार का या बुद्धि का अहकार करना भूल है। 13 अशुभ कर्मोदय के समय बुद्धि काम ही नहीं देती, किन्तु वह कर्मों के अनुसार उल्टा काम करा देती है। इसलिए अपनी बुद्धि का अहकार करना बड़ी भूल है।

### कपट (माया)

1 किसी भी काम में सफलता शुभ कर्मों से मिलती है। कपट करने वाले बहुत से आदमी अपने कामों में असफल रहते हैं। 2 यदि कपट से सुख मिलता तो प्रायः सभी लोग दुःख से बच जाते। 3 कपट अशुभ कर्म है। कपट के साथ किया हुआ अच्छा काम भी बुरा बन जाता है। 4 वह कपट का भेद खुल जाने के डर से हमेशा भयभीत और दुःखी रहता है। 5 कपट करने वाले का कोई भी विश्वास नहीं करता है। सभी लोगों से उसका सम्बन्ध टूट जाता है और उसका आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक पतन हो जाता है। 6 सत्य आचरण करने वाले की देवता भी सहायता करते हैं।

### धन लोभ से बचिए

गृहस्थ को अपने और अपने परिवार के जीवन-निर्वाह के लिए धन तो कमाना ही पड़ता है। किन्तु यदि वह धन कमाते हुए भी अपनी विचारधारा को सही मार्ग पर चलाए और अपने विचारों में हर्ष-विषाद न होने दे तो वह धन के लोभ से होने वाले अशुभ कर्मों के बंध से और अशुभ कर्मों के बंध से मिलने वाले दुःख से बच सकता है। जैसे—एक सेठजी को उनके मुनीमजी ने कहा कि जो एक लाख रुपये का माल गोदाम में रखा गया था उसका भाव घट गया है और बहुत हानि हो गई है। यह सुनने पर भी सेठजी के चेहरे पर उदासी नहीं आई और उन्होंने कहा—“जैसा योग था, वैसा हो गया। चिंता करने की क्या जरूरत है ?” दूसरे दिन ही बाहर भेजे हुए माल के बाबत मुनीमजी ने कहा कि इसमें दो लाख का लाभ हुआ है। यह सुनकर सेठजी के मन में कुछ भी हर्ष नहीं हुआ और उन्होंने मुनीमजी से कहा कि लाभ और हानि तो कर्मों का खेल है। इसमें हर्ष और विषाद करने की क्या जरूरत है ? इस प्रकार की भावना वाले लोग ही अशुभ कर्मों के बंध और अशुभ कर्मों से मिलने वाले दुःख से बच सकते हैं।



भगवान् महावीर ने मोक्ष मार्ग मे सहायक अपने पच महाव्रतों मे अपरिग्रह को प्रमुख स्थान दिया है। इसलिए पच महाव्रतधारी साधु तो धन को छूते भी नहीं, किन्तु गृहस्थ का काम धन के बिना नहीं चलता। इसलिए उसके लिए परिग्रह-परिमाण-व्रत का उपदेश दिया गया है जिसका अर्थ है कि श्रावक अपने धन की, जमीन की, वस्त्रों की और खाने-पीने की चीजों की सीमा निर्धारित कर ले, जिससे कि उसका लोभ बढ़ने न पाए।

श्रावक को धन-संग्रह का लोभ छोड़कर जो कुछ उसके पास है, उसमे से दूसरों के जीवन-निर्वाह के लिए, ज्ञान-प्राप्ति के लिए और आत्म-सिद्धि के लिए दान देकर दूसरों को सहयोग देना चाहिए। यही है सच्चे सुख की प्राप्ति का मार्ग।

स्वाध्याय सूत्र-1 धन से मनुष्य के सब दुख दूर नहीं होते। 2 धन से मिलने वाले थोड़े सुख के बदले में बहुत समय तक दुख भोगना पड़ता है। 3 धन का लोभ छोड़ना और सतोष रखना ही मोक्ष का मार्ग है।

### धन का लोभ

1 अनेक धनवान व्यक्ति घर में अपार धन होते हुए भी बहुत दुखी देखे जाते हैं। सुख धन से नहीं मिलता किन्तु सुख मिलता है शुभ कर्मों से। 2 घर में बहुत धन होते हुए भी यदि परिवार में कोई रोगी हो, विकलांग हो, किसी का दिमाग खराब हो गया हो, कोई झगडालू हो, दुर्व्यसनी हो, कुछ आलसी हो तो सुख कहीं से मिलेगा। 3 धन का आना या जाना मनुष्य के हाथ में नहीं है, यह तो कर्माधीन है। जो भी न्यायपूर्वक मिले, उसी में सतोष करके धन का सदुपयोग दान में और दूसरों की सम्यक् सेवा में करना चाहिए। 4 यदि पुण्य का उदय हो तो गरीब मजदूर धन के बिना भी सुखी रहता है। साधुओं का काम तो बिना धन के ही चलता है। सुख धन या धन के लोभ से नहीं मिलता, सुख मिलता है—सतोष और त्याग से।

### थोड़ा सुख बहुत दुख

आज हम लोग इस शरीर को ही आत्मा मानकर इस शरीर को सुख देने में लगे हुए हैं, किन्तु यह हमारी भूल है। एक तो, हमारा शरीर अलग है और हमारी आत्मा अलग है और दूसरे, यह भौतिक शारीरिक सुख सच्चा सुख नहीं है। यह सुखाभास है। और तीसरे, इस थोड़े से भौतिक सुख के बदले में उसी समय या कुछ समय बाद बहुत दुख भोगना पड़ता है। अगर





नहीं सम्भलने से उसे नरक में ले जाती है। 7 सुख-भोगों के समय यह विचारना चाहिए कि “खेद है कि मेरे कर्म बंध रहे हैं, मेरे कर्म बंध रहे हैं।” इस विचार से सुख की आसक्ति कम हो जाएगी।

### दुःखानुभूति

1 सुख-भोगों में बाधा पड़ने से या उनके लिए धन नहीं मिलने से या रोगों से घिर जाने पर या अप्रिय घटना घट जाने पर या उपसर्गों के आने पर मनुष्य को दुःखानुभूति होती है। इससे अशुभ कर्मों का बंध होता है जो दुःख का कारण बनता है। 2 अपने पति के मर जाने पर और इससे अपने सुख-भोगों में बाधा पड़ने पर चक्रवर्ती की पटरानी छ मास तक दुःख और विलाप करके छोटे नरक में जाती है। 3 दुःखानुभूति से बचने वाले और दुःख को कर्मों की निर्जरा में सहायक समझकर समता रखने वाले समता से अपने कर्म काटकर मुनि गजसुकुमाल, मुनि उदाई की भाँति मोक्ष में जाते हैं। 4 दुःख में दुःखी होने और रोने से जो नवीन अशुभ कर्म बंधते हैं, उनके बदले में उसे पुनः दुःख मिलता है। 5 दुःख के समय यह विचारधारा दुःख को कम करने में सहायक होगी—“यह दुःख, दुःख नहीं है। यह मेरे कर्मों का फल है। यह मेरे कर्मों की निर्जरा है। मुझे हिम्मत रखनी चाहिए, मुझे समता रखनी चाहिए। इससे मेरे कर्म कटेगें। आज मेरा अहोभाग्य है कि मेरे कर्म कट रहे हैं और मैं मोक्ष के नजदीक पहुँच रहा हूँ।”

### इच्छा

जिन कामों के नहीं करने से अपना और दूसरों का आत्म-उत्थान रुक जाए, उसे कर्तव्य या आत्म-धर्म समझना चाहिए। जैसे—दान, तप या स्वाध्याय। इनका करना कर्तव्य है।

जिन कामों के नहीं करने से अपना और दूसरों का जीवन-निर्वाह रुक जाए, उसे आवश्यकता या अनिवार्य कार्य समझना चाहिए। जैसे—भूख में सादे भोजन के लिए मन का चलना, शीत-ताप और वर्षा से बचने के लिए आश्रय की इच्छा।

जिस वस्तु या काम के किए बिना जीवन-निर्वाह या आत्म-उत्थान में बाधा नहीं पहुँचे किन्तु जिससे भौतिक सुखानुभूति मिलती हो, उस वस्तु या काम के लिए मन का चलना इच्छा है। जैसे सादे भोजन के स्थान पर बढ़िया स्वादिष्ट पकवानों की इच्छा करना, साधारण आश्रय की जगह



अनुसार अच्छे या बुरे फल देने की व्यवस्था उनके कर्मानुसार होती है। क्योंकि ये फल केवल भौतिक शरीर के माध्यम से ही भोगे जा सकते हैं, इसलिए उन-उन प्राणियों को फल भोगने के लिए देव या मनुष्य या नारकी पशु या पक्षी की, जैसी शरीर की आवश्यकता होती है, वैसा ही शरीर उन्हें कर्मानुसार मिलता है और किस-किस प्राणी को उस-उस शरीर में कितने-कितने समय तक कब से कब तक रहना है, यह भी उनके कर्मों पर निर्भर है। इसके साथ-साथ किस-किस प्राणी को यानी उपादान को, किस-किस प्राणी से अर्थात् निमित्त से कैसे-कैसे और कितना-कितना सुख-दुःख मिलना है, इस व्यवस्था में भी उनके कर्मों की प्रधानता होती है। और उस फल पाने वाले (उपादान) को फल देने वाले (निमित्त) का उतने समय तक एक परिवार में जन्म द्वारा, विवाह द्वारा रहना या स्वामी-सेवक के रूप में रहना या एक-दूसरे के शत्रु के रूप में एक ही परिवार में रहना या एक परिवार के रूप में रहना भी उनके कर्मों पर आधारित है अर्थात् परिवारों की रचना प्राणियों के कर्मानुसार होती है। दो प्राणियों का संयोग तथा वियोग भी कर्मानुसार होता है। इस प्रकार परिवार की रचना का आधार भी उपादानों या निमित्तों का संयोग ही है।

सारांश—जब तक सब कर्मों का क्षय नहीं होता है तब तक सभी मनुष्यों, पशुओं और पक्षियों को अपनी आयु समाप्त होने पर उनके कर्मों का फल भोगने के लिए कर्मों के आदेशों के अनुसार पुराने शरीर और परिवार को छोड़कर नये शरीर और दूसरे परिवार में जन्म लेना पड़ता है। किसी भी मनुष्य को उसके शुभ कर्मों के बिना उसके परिवार वाले उसके नाथ (रक्षक) नहीं बन सकते और हमेशा उसके साथ नहीं रह सकते। इसलिए परिवार के बाबत कहा जाता है—“नाथ नहीं है, साथ नहीं है।”

## परिवार मोह

1 कोई भी प्राणी दूसरे प्राणी को उसके अशुभ कर्मों के फल से, दुःख से, कष्ट से, हानि से और मौत से प्रयास करने पर भी बचा नहीं सकता। 2 पिता-पुत्र या पति-पत्नी एक-दूसरे का भला उनके शुभ कर्मोदय के बिना प्रयास करके भी नहीं कर सकते। 3 शुभ कर्मोदय के 4 किसी का दूसरे शत्रु के द्वारा बुरा किए जाने पर भी 5 न ही होता है। 4 किसी को सुख देना या 5 रहना



## प्रतिदिन का स्वाध्याय

1 भला हो, भला हो, सबका भला हो, बुरा किसी का कभी नहीं हो।  
2 इस ससार में मेरे अशुभ कर्मों के सिवाय कोई मेरा शत्रु नहीं है। क्रोध का आना दिमाग में कुछ खराबी होने की निशानी है। 3 मैंने जो अच्छा काम किया है, उससे समाज का कर्ज चुकाया है। अभी और भी कर्ज चुकाना बाकी है। मेरे अन्दर अहंकार का आना मेरे समझ की कमी है।  
4 झूठ, कपट से धन आता नहीं, आता है तो ठहरता नहीं। ठहरता है तो बरबाद करके जाता है। और सत्याचरन वाले की देवता मदद करते हैं।  
5 धन का आना और चला जाना दोनों ही कर्मों का खेल है। लोभ से अशुभ कर्मों का बंध होता है। यह भविष्य में दुखों को निमंत्रण देना है। 6 प्रत्येक भौतिक सुख के बदले में दुख तो भोगना ही पड़ता है। 7 दुख को दुख मानने से और रोने से होने वाले आर्तध्यान के बदले में नया दुख फिर भोगना पड़ता है। 8 भौतिक सुख भोगों की केवल इच्छा से ही कुछ भी किए बिना भी अशुभ कर्म बंधते हैं और इच्छा निरोध (रोकने) से कर्म कटते हैं। 9 परिवार में कोई किसी का नाथ नहीं है और कोई किसी का साथी भी नहीं है। 10 यह शरीर अलग है और मैं अलग हूँ। यह शरीर मेरा नहीं है। यह परिवार भी मेरा नहीं है और यह धन भी मेरा नहीं है। 11 तन तजना है सिद्ध बनना है। अर्थात् यह शरीर छोड़कर सिद्ध बनना है। 12 प्रतिदिन बार-बार विचारिये कि कहीं क्रोध, अहंकार, कपट, लोभ की भावना और अशुभ इच्छाओं का शिकार तो मैं नहीं बना हूँ। यदि ऐसा हुआ हो तो उसका पश्चात्ताप करना जरूरी है। 13 सत्य बोलने वाले की देवता प्रार्थना किये बिना भी मदद करते हैं। दान देने से कर्मों की रेखा भी बदल सकती है।





कौरव परिवार कभी दुःख नहीं पाते। कपट से धन आता नहीं, यदि आता है तो ठहरता नहीं और ठहरता है तो बरबाद करके जाता है।

4 धन का लोभ—परिवार के और अपने जीवन निर्वाह के लिए धन कमाना तो गृहस्थ का धर्म है किन्तु धन कमाना ही अपना लक्ष्य बनाना मोक्ष मार्ग छोड़कर ससार के मार्ग पर चलना है। धन का आना और धन का जाना कर्मों का खेल है।

5 परिवार है साथी नहीं मेरा।

परिवार है साथी कर्मों का।।

परिवार वाले हमारे अशुभ कर्मों को शुभ कर्मों में नहीं बदल सकते।

6 मनुष्य के शरीर की रक्षा उसके शुभ कर्मों से ही होती है। इसलिए मनुष्य को अपने शरीर की विशेष चिन्ता नहीं करके अपना समय धर्म-ध्यान में लगाना चाहिए।

7 दुःख के समय रोने से, आर्तध्यान करने से अशुभ कर्मों का बन्ध होता है जिससे दुःख मिलता है। समता रखने से अशुभ कर्म नष्ट होते हैं।

8 भौतिक सुख भोग—भौतिक सुखों में और मनोरंजन में अशुभ विचार और अशुभ काम करने से, उनमें रस लेने से अशुभ कर्म बधते हैं और दुःख मिलता है।

9 आत्म-भावना—मैं भीतर हूँ, मैं भीतर हूँ।

सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा।

ऊपर लिखे हुए समता के नौ सूत्रों के सबध में इस प्रकार चिन्तन-मनन करना चाहिए—

10 क्रोध के सबध में चिन्तन-मनन—क्रोध अहंकार का उग्ररूप है। अहंकार से होने वाली सभी बुराइयों क्रोध में है। अहंकार छोड़ने से क्रोध छूट जाता है। क्रोध के समय मनुष्य प्रायः पागल-सा बन जाता है। वह चीजों की तोड़-फोड़ करता है। मनुष्यों से मारपीट करता है। दूसरों की तथा कभी-कभी अपनी भी हत्या कर लेता है। क्रोधी मनुष्य जीवन भर पछताता रहता है। क्रोधी मनुष्य अपने शत्रु के पीछे पड़ जाता है। उसके अपराध खोजता रहता है। अपराधों के लिए प्रमाण (सबूत) ढूँढता है और उससे प्रतिशोध (बदला) लेता है। क्रोध आने का कारण है मनुष्य की इच्छापूर्ति में बाधा पड़ना। जैसे—प्रशंसा, धन प्राप्ति, भौतिक सुख प्राप्ति, परिवार से सुख प्राप्ति और उसके दुःख से भागने में बाधा पड़ना।





और कौरव वंश का विनाश करवाया। पृथ्वीराज के अशुभ कर्मों ने उसको अहकारी बनवाया, उसे असावधान बनवाया, मोहम्मद गोरी को जेल में कैद करवाया, पृथ्वीराज को अंधा बनवाया और उसकी दुर्दशा करवायी। अशुभ कर्म अपनी पहली चोट मनुष्य की बुद्धि पर ही लगाते हैं और बुद्धि विपरीत बनाकर उस मनुष्य का विनाश कराते हैं। मनुष्य के शरीर को रोग और बुढ़ापा बेकार बना देते हैं। मनुष्य के धन को धूर्त लोग और मनुष्य का दुर्भाग्य खा जाता है। अशुभ कर्मोदय के समय परिवार की शक्ति को परिवार की फूट खा जाती है। उसकी बुद्धि को उसके अशुभ कर्म विपरीत ओर विनाशकारी बना देते हैं। इस प्रकार मनुष्य की सभी शक्तियाँ बेकार बन जाती हैं। अतः अहंकार करना भयंकर भूल है।

12 माया (कपट) के सबंध में चित्तन—साधारण मनुष्य से देवता में और देवताओं से तपस्वियों में और तपस्वियों से भी अधिक शक्ति सत्यवादी में होती है, जैसा विश्वामित्र और हरिश्चन्द्र की कथा से प्रमाणित होता है।

13 धन का लोभ—जो धन जब, जितना और जिस प्रकार से कर्मों के अनुसार आना है वे तो साधारण पुरुषार्थ से और बिना इच्छा के और लोभ की भावना के बिना भी आ ही जावेगा। समझदार मनुष्य धन का लोभ नहीं करता। वह इच्छा छोड़कर 'इच्छा निरोध तप' से अपने अशुभ कर्मों को नष्ट करता है। साधारण स्थिति में कभी-कभी मनुष्य अशुभ काम और पाप कर बैठता है जिससे साधारणतया आता हुआ धन भी बढ़ हो जाता है। कभी-कभी शुभ कर्मों से दान देने से और पुण्य करने से तुरन्त ही अधिक धन आ सकता है। जैसे महापुरुष को दान देने से कभी-कभी धन की वर्षा होने लगती है या धन आने लगता है। इसलिए मनुष्य को जीवन में हमेशा शुभ व्यवहार का ही पालन करना चाहिए।

14 परिवार के सबंध में चित्तन—क्या आप मोक्ष पाना नहीं चाहते ? परमात्म पद पाना नहीं चाहते ? यदि चाहते हैं तो यह स्पष्ट है कि आपकी अन्तरात्मा यह मान चुकी है कि परिवार आपका नहीं है। आप इसे मोक्ष पाने के लिए छोड़ने को तैयार हैं। मरते समय परिवार को छोड़ना ही पड़ता है। जब शरीर ही छोड़ना पड़ता है तो परिवार अपना होगा ही कहाँ से ? आत्म-भावना भाने वाला यही स्वाध्याय करता है कि मुझ आत्मा के सिवाय और कुछ भी मेरा नहीं होता। यह शरीर मेरा नहीं है, यह परिवार मेरा नहीं



प्रकार और जिस निमित्त से आना है वह या तो तप से नष्ट होता है या समताभाव पूर्वक भोगने से ही नष्ट होता है। समताभाव पूर्वक दुःख भोगने से मोक्ष मिलता है। जो सेवा जब, जितनी, जिसकी, जिस प्रकार निकाचित कर्मों की गति के अनुसार करने का योग है वह तो चन्दनबाला की तरह करनी ही पडती है। दुःख के समय कषाय से बचने और विचारो में और आचरण में समता रखने के लिए इस प्रकार स्वाध्याय और चितन-मनन किया जा सकता है—

दुःख के समय दुःख को दुःख मानना, रोना और आर्तध्यान करना अशुभ क्रिया है। इससे अशुभ कर्म बध होता है फिर उन अशुभ कर्मों के उदय होने पर दुबारा दुःख मिलता है। इस दुबारा दुःख भोगते समय रोने से और आर्तध्यान करने से फिर नये सिरे से अशुभ कर्मों का बध होता है। इस प्रकार दुःख और आर्तध्यान करते रहने से दुःख के आने का अत होता ही नहीं। अधिक रोने वाला और आर्तध्यान करने वाला नरक में जा सकता है। पति के वियोग में छ माह तक मोह वश आर्तध्यान करने वाली चक्रवर्ती की पटरानी छठे नरक में चली जाती है।

17 सुख भावना के सबध में चितन-मनन—भौतिक सुख को सुख मानने से, उसमें आसक्त होने से और अशुभ कार्य करने से अशुभ कर्मों का बध होता है और थोड़े सुख के बदले में बहुत समय तक दुःख मिलता है। जैन ग्रन्थों में यह भी बताया गया है कि भौतिक सुखों में लीन रहने वाला ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती सातवे नरक में चला गया। यह बात भी विशेष ध्यान देने की है कि सुख भोगना दुःख के आने का कारण नहीं होता किन्तु सुख भोगते समय दुःख प्राप्ति के अशुभ कार्य करने से और अशुभ विचार करने से दुःख का कारण बनता है। यदि सुख भोगते हुए भी शुभ कार्य और विवेक रखा जाय तो दुःख का आगमन नहीं हो सकता है। दुःख का आना तभी बढ़ होगा जबकि दुःख और सुख दोनों में समता रखी जावे। सुख में रस नहीं लेने वाला, नहीं हँसने वाला जम्बू स्वामी की तरह मोक्ष में जाता है।

18 अशुभ कर्मों का बध कराने वाले नीचे लिखे हुए भौतिक सुखों के स्रोत में रस नहीं लेकर मनुष्य को कर्म बध से बचना चाहिए। वे स्रोत ये हैं—

1 आँखों से टी वी, सिनेमा, नाटक, नृत्य, मेले, उत्सव, दुर्भावना से



दूसरो की यथायोग्य सम्यक् सेवा करना मनुष्य का धर्म है किन्तु दूसरो से अपनी अनावश्यक सेवा कराना पाप है।

दूसरो के प्रति सदभावना, दुःखी को सात्वना देना, भटकते हुए प्राणी को सही मार्ग बताना, दूसरो की आत्म-शुद्धि में और जीवन निर्वाह में सहयोग देना तथा अपने सामने आये हुए कार्यों को अपनी मर्यादा का ध्यान रखते हुए यथाशक्ति, यथा सभव पूर्ण करना आदि सेवा कार्य है।

22 कर्मों की प्रधानता—हमारे इस जीवन के पहले वाले जीवन की समाप्ति के समय उदय में आने वाले कर्मों ने ही हमारा वर्तमान शरीर, परिवार, जीवन साथी, वर्तमान परिस्थिति और वर्तमान उद्योग धधा अर्थात् पेशा दिया है। हमारा कर्मण शरीर ही हमारी रक्षा करता है। मृत्यु को बुलाता है, वही कहीं पर उपादान व कहीं पर निमित्त बनाता है, वही सुख और दुःख को खींचकर हमारे पास लाता है और वही हमारा सरक्षक है, वही हमारे प्राय सभी भौतिक कार्यों में प्रधान रहता है, उसके विधान को बदलना कठिन है। अतः चित्ता और राग-द्वेष छोड़कर सतोष और समता रखकर, शुभ और शुद्ध पुरुषार्थ में लगा रहना ही मानव धर्म है।

23 ज्ञानवार्ता—(क) जब कर्मों के प्रभाव से होने वाली पुद्गल स्पर्शना अर्थात् होनहार रुक नहीं सकते तो क्रोध करने से क्या लाभ ? (ख) जब मनुष्य बड़ा नहीं किन्तु समय मनुष्य से अधिक बलवान है तो अहकार करने से क्या लाभ ? (ग) जब कर्मण शरीर ही इस औदारिक शरीर का सरक्षक है तो यह औदारिक शरीर मेरा नहीं हो सकता। (घ) जब प्रत्येक जीव का सरक्षक ही अलग-अलग है तो उनका एक परिवार में होने का कोई अर्थ ही नहीं रहता। इन भावनाओं को लाख-लाख बार जपने से जीवन में परिवर्तन अवश्य ही आता है।

24. मोक्ष प्राप्ति में कुछ बाधाएँ—

1 मोक्ष प्राप्ति में प्रथम बाधक विकार है—क्रोध। इससे बचने के लिए इस प्रकार स्वाध्याय कीजिए—“क्रोधी कौशिक, चण्डकौशिक सर्प बना और समताधारी मुनि गजसुकुमाल सिद्ध बने।” बहुत दिनों तक ऐसा स्वाध्याय करने से क्रोध अवश्य ही कम होगा। क्रोध के समय मौन रहना और वहाँ से उठकर दूर चले जाना आवश्यक है।

2 दूसरी बाधा है—मान (अहम् भाव)। इसके लिए चित्तन और



‘णमो सिद्धाण’

## दोष मत दो निमित्त को

कषाय मुक्ति : सातवा भाग

(सिद्ध पद प्राप्ति की साधना)

यह स्वाध्याय जीवन भर प्रतिदिन कई बार करना चाहिए। सामायिक या किसी भी खाली समय में दुकान में, मैदान में, मकान में, किसी भी गह, दिन में या रात में, किसी भी समय बिस्तर पर लेटे हुए किसी भी शा में, बिना स्नान किए भी किया जा सकता है। हजारों लाखों बार आध्याय करने से सिद्ध पद की प्राप्ति होती है।

दोष मत दो निमित्त को सप्त-सूत्री-स्वाध्याय

१) दोष मत दो, दोष मत दो, दोष मत दो निमित्त को।

२) भला हो, भला हो, सबका भला हो।

३) नमस्कार है सब सिद्धों को, नमस्कार है सब सतों को।

४) शरीर अलग है, मैं अलग हूँ, शरीर नाशवान है।

५) परिवार निमित्त ही बनता है।

६) धन कर्माधीन है।

७) मैं सिद्ध बनूंगा।

थम भावना—अद्वेष भावना अक्रोध भावना

इस भावना का प्रतिदिन अधिक से अधिक स्वाध्याय करने से यह भावना मनुष्य के अवचेतन मन में, रोम-रोम में अपना स्थान बना लेगी और अस्कार रूप में अनन्तकाल तक साथ रहेगी।

इनमें प्रथम भावना के हजारों या लाखों बार स्वाध्याय करने से, उसके अर्थ का चिंतन करने से, इस भावना को जीवन में उतारने वाले मुनि जसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदायी, मुनि अर्जुनमाली, मुनि वृद्ध प्रहारी, निखदक जिनकी जीवित अवस्था में चमड़ी उतारी गई थी और पाँच सौ





## दूसरी भावना—परहित भावना

“भला हो, भला हो, सबका भला हो” इस भावना के स्वाध्याय से द्वेष, दुर्भावना, क्रोध, प्रतिशोध अर्थात् बदला लेने की भावना धीरे-धीरे दूर हो जाती है और मैत्री, अनुकम्पा, सम्यक् सेवा, समता आदि की भावना आने लगती है।

एक लेखक ने कहा है कि दूसरो का भला करने वाला और भला चाहने वाला भी तीर्थकर बन सकता है। क्षण भर के अपध्यान से तन्दुल मत्स्य सातवीं नरक जाता है तो दूसरो का भला चाहने वाला जीव मोक्ष क्यों नहीं पहुँच सकता ? हमारे इस सूत्र के स्वाध्याय से चाहे दूसरो का भला नहीं हो तो भी हमारी शुभ भावना के कारण हमारा भला तो अवश्य होगा। जिससे हमें बाधा पहुँचती है उसका नाम लेकर बार-बार कहना चाहिए कि श्री का भला हो, भला हो, भला हो। हमारी इन भाव तरंगों से वह हमारा हित करने वाला मित्र भी बन सकता है।

## तीसरी भावना—नमस्कार या विनय भावना

घर बैठे हुए भी इस भावना को भाते समय कल्पना में दोनों हाथ जोड़कर सतों को या सिद्धों को कल्पना में सिर झुकाकर और उनके चरण छूकर भाव-वदना करनी चाहिए और मन में यह कहना चाहिए—“नमस्कार है सब सिद्धों को, नमस्कार है सब सतों को।” इस भावना से पाप नष्ट होते हैं। इससे अहंकार और क्रोध भी दूर होते हैं। इससे पुण्य, विनय, केवलज्ञान तक की प्राप्ति होती है। बाहुबलीजी को अहंकार पूर्वक बारह महीनों तक कठोर तप करने से भी जो केवलज्ञान अविनय के कारण प्राप्त नहीं हुआ था, वह केवलज्ञान उनके अहंकार छोड़ते ही और विनय पूर्वक छोटे सतों को वदना करने जाने के लिए एक पैर उठाते ही प्राप्त हो गया। विनय से केवलज्ञान की प्राप्ति भी होती है। विनय बारह महीने के लगातार उपवास से भी बढ़कर है।

विनय के सबध में एक कविता भी है—

मैत्री भाव जीवों पर रखते।

मानवता का आदर करते।।

नमस्कार संतों को करते।



का किसी के साथ सबध नहीं होता। जब तक स्थूल शरीर होता है तभी तक उपादान निमित्त सबध बनते और टूटते रहते हैं।

उपादान-निमित्त सबध सम्यक् द्रव्य सेवा, भाव सेवा, शुद्ध भावनाओं, पश्चात्ताप, तप और समता से समाप्त हो जाता है।

मोह पर विजय पाने के लिए 'परिवार मेरा नहीं है।' इस भावना का हजारों बार स्वाध्याय करने से भी मोह टूट जाता है। कभी-कभी किसी भावनात्मक चोट लगने से या किसी विशेष घटना से भी मोह टूट जाता है। जिस प्रकार कि मरुदेवी माता, भरत चक्रवर्ती, बाहुबलीजी, नमिराजर्षि आदि का मोह टूट गया था।

परिवार के सभी सदस्य मेरे लिए केवल निमित्त ही बनते हैं। वे अपने परिश्रम से मेरे कर्मों को नहीं बदल सकते, मुझे शरण नहीं दे सकते, मेरे सरक्षक नहीं बन सकते, क्योंकि मेरे शरीर का सरक्षक तो मेरा कर्मण शरीर ही बनता है। वे तो केवल अस्थाई निमित्त ही बनते हैं। उन पर क्रोध करना, मेरे लिए ठीक नहीं है।

### छठी भावना—धन का लोभ

“धन का आना और धन का जाना मेरे हाथ में नहीं है, यह मेरे कर्मों के अधीन है।” शुभ कर्मोदय के बिना केवल भाग-दौड़ करने और “हाय धन, हाय धन” करने या रोने से धन नहीं आता है। दान-पुण्य, धर्म करने से इच्छा और लोभ के बिना भी साधारण पुरुषार्थ से भी धन की वर्षा होने लगती है।

### सातवी अन्तिम भावना—संकल्प

“मैं आत्मा हूँ, मैं शरीर के भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूँगा। मुझ आत्मा के अमूर्त आत्म-प्रदेश सिद्ध लोक में, सिद्ध दशा में, अटल-अवगाहना प्राप्त करेगा। मैं आनन्दघन और अभय बनूँगा। इस भावना का स्वाध्याय और कल्पना दोनों करनी चाहिए। कल्पना इस प्रकार की जाती है—“मुझ आत्मा के अमूर्त आत्म-प्रदेश सिद्ध लोक में, सिद्ध दशा में, अटल-अवगाहना प्राप्त कर चुके हैं और मैं सिद्ध बन गया हूँ।” इस साधना से मनुष्य के मन से सासारिक बातों और कामों के चित्र मिट जाते हैं। उसका भौतिक जीवन आध्यात्मिक जीवन बन जाता है। यह सिद्ध पद प्राप्ति की साधना है।

चौथी शरीर भावना और इस सातवी भावना का कुछ अत्यन्त हर्ष के बाद ये दोनों भावनाएँ केवल छ शब्दों में इस प्रकार भायी जा सکت हैं—

“मैं भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूँगा।”

इसी प्रकार शरीर परिवार और धन के मोह को दूर करने के लिए भी इस प्रकार स्वाध्याय किया जा सकता है—“शरीर, परिवार, धन आदि में नहीं है।

### ज्ञानवार्ता

अपने जीवन में जितने पाप किए हो उनको कभी-कभी याद करके पश्चात्ताप कर लेने से वे हल्के पड़ जाते हैं।

शील पालने के लिए हमें ‘शील, शील, शील’ इस प्रकार का स्वप्न करना चाहिए। विजय सेठ, विजया सेठानी की कथाओं का अध्ययन में स्वाध्याय, अनुमोदना करते रहना चाहिए।

अकेली स्त्री को अकेले पुरुष के साथ एकान्त में बैठना या एक-दूसरे के चित्रों का देखना या एक-दूसरे की कल्पना करना या मादक भोजन शराब आदि लेना नहीं चाहिए।

जैन ग्रन्थों में सत्य को भगवान कहा गया है। धर्मात्मा (सत्यवादी) को देवता नमस्कार करते हैं। सत्यवादी देवताओं को प्रिय लगता है, वे उसकी सहायता करते हैं। सत्य पाँच महाव्रतों में एक व्रत है। सत्य को महातप माना गया है। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र में देवताओं से अविनाश शक्ति थी।



‘णमो सिद्धाण’

## सिद्ध-पद प्राप्ति की साधना

कषाय मुक्ति—आठवा भाग

“सिद्ध पद पाना ही जीवन का लक्ष्य है।”

—आचार्य श्री नानेश

### 1. सिद्ध-पद प्राप्ति की साधना—

स्वाध्याय का पाठ—“मै भीतर हूँ, मै सिद्ध बनूंगा।”

चितन-ममन-समता विभूति आचार्यश्री नानालालजी म सा ने “मै सिद्ध बनूंगा” इस भावना को समीक्षण ध्यान में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है, अतः सिद्ध बनने का सकल्प करके हमेशा बहुत समय तक इस सकल्प को बार-बार दोहराकर इसे दृढ बनाना चाहिए और स्वय की (आत्मा की) सिद्ध होने की दशा की कल्पना करनी चाहिए। इससे मनुष्य के मन में सासारिक बातों व कामों के चित्र मिट जाते हैं। उसका भौतिक जीवन आध्यात्मिक जीवन बन जाता है, यह सिद्ध-पद प्राप्ति की साधना है। ये सिद्धों का अरूपी ध्यान जीवन लक्ष्य प्राप्त करने में सहायक हो सकता है।

### 2 अह छोड़ने के लिए स्वाध्याय का पाठ—

“बड़ा मत समझो स्वय को।।

बड़ा समझो बड़ों को, गुरुजनो को, सतों को।

दयावान को, सत्यवान को, शीलवान को, धर्मी को।।”

चितन-मनन-स्वय को बड़ा अर्थात् बलवान, बुद्धिमान, धनवान व धार्मिक समझना और अपने बड़प्पन का प्रदर्शन करना अह (अभिमान) है। बड़ों को अर्थात् गुरुजनो को, सतों को, धर्मात्माओं को बड़ा समझना व उनकी सुसेवा करना विनय है। अह का पश्चात्ताप करने से अह और पाप नष्ट हो जाते हैं। अह से हानि होती है और दुःख मिलता है। विनय से बाहुबलीजी की भांति मोक्ष मिलता है। “विनयवान भगवान हैं बनता।”



परिवार मोह छोड़ने का स्वाध्याय का दूसरा पाठ—

परिवार अपना नहीं बना रहता ।

चितन—परिवार हमे हमारे कर्म दंड से नहीं बचा सकता । परिवार हमे हमारे कर्मफल से मिलने वाले सुख से अधिक सुख दे नहीं सकता ।

उपादान—निमित्त-सबध अर्थात् लेना-देना समाप्त होने पर परिवार हमे अपने साथ रख नहीं सकता । आत्माओ मे पारिवारिक सबध होते ही नहीं । परिवार मोह मे मरने वाली महेशदत्त की माता कुतिया बनी और परिवार मोह छूटते ही मरुदेवी माता मोक्ष को प्राप्त हुई ।

7 लोभ छोड़ने के लिए स्वाध्याय का पाठ—

“सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा, धन का लोभी नहीं बनूगा ।”

चितन—संसार मे लोभ ही पाप और सब दुखो का मूल है । धन के लिए दूसरो का शोषण नहीं करना चाहिए । जैसे मधुमक्खियाँ फूलो से शहद इकट्ठा करती है वैसे ही गृहस्थ को साधारण लाभ (मुनाफा) या वेतन लेना चाहिए ।

8 “णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाण” या नमस्कार मंत्र का बार-बार जप करना और ध्यान करना सब पापो को नष्ट करता है । इसमे णमो सिद्धाण पद का, सिद्धो की अटल अवगाहना का, सिद्धो के अमूर्त भाव का और उनके आठ गुणो का ध्यान किया जा सकता है ।

9 ऊपर वाले ध्यान और चितन की विस्तृत सामग्री कषाय-मुक्ति तीसरा भाग, सातवां भाग और ध्यान एक अनुशीलन मे दी गई है ।

10 सद्भावना—“नहीं दुख हो, नहीं पतन हो । किन्तु सुख सग आत्मोन्नति हो ।”

अर्थ—जिस काम को हम करे उनसे किसी को दुख नहीं पहुँचे और उनका और हमारा दोनो का पतन भी नहीं हो किन्तु दूसरो को सुख पहुँचे और साथ-साथ उनकी और हमारी दोनो की आत्मा का भी उत्थान हो, वही काम सद्भावना युक्त होगा ।

11 दान मे प्रथम स्थान अभयदान का है । इससे सुख और मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है । दान मे सुपात्रदान और अनुकम्पा दान का भी बडा महत्त्व है । किसी भी जीव को अपनी आत्मा के समान समझ कर सहयोग दिया जाय या उसकी सम्यक् सेवा की जाय तो यह भी सुख और मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है । किसी भी प्राणी को बाहरी दीन-हीन, करुणाजनक





17 अशुभ कर्म के उदय को रोकना और शुभ कर्म को उदय में लाना हमारे हाथ में नहीं, महापुरुषों की बात अलग है। वे कभी-कभी केवली समुद्रघात के समय या कर्मों की उदीरणा करने के लिए उन कर्मों को उनके उदयकाल से पहले उदय में लाकर और भोग कर समाप्त कर लेते हैं।

18 धन का आना और धन का चला जाना कर्मों का खेल है। अतः मनुष्य को लोभ में न पडकर हमेशा शुभ पुरुषार्थ ही करना चाहिए।

19 कभी-कभी झूठ, कपट, हिंसा आदि से धन आ जाता है तो हम समझते हैं कि अशुभ पुरुषार्थ से धन आ गया है, इसलिये अशुभ पुरुषार्थ करते रहे। लेकिन यह हमारा भ्रम है। हमें पापकर्म से जो धन वर्तमान में मिलता है वह धन वास्वत में पापकर्म से नहीं मिला। वह तो पूर्व में किए हुए किसी शुभ कर्म के उदय से मिला है, जिसका हमें हमारे अल्पज्ञान के कारण पता ही नहीं चलता। इस शुभ कर्म के उदय के समय यदि हम अशुभ कर्म नहीं भी करें तो भी उस पूर्वकृत शुभ कर्म के प्रभाव से यह धन आ ही जाता है। शुभ कर्मों के प्रभाव से कभी-कभी चुपचाप बैठे हुए मनुष्य के पास भी धन आ जाता है। जैसे शालिभद्रजी या धन्नाजी को मिला करता था। तीर्थकरो को जब वे वार्षिक दान देते हैं उस समय उनके पास देवताओं द्वारा धन पहुँच जाता है, करोड़पतियों के घर में जो बच्चे जन्म लेते हैं वे बच्चे उसी समय करोड़ों रूपयों के मालिक हो जाते हैं। गोद या वसीयत आदि से भी बिना कमाए धन आ जाता है।

20 यदि दुःख धन से दूर हो सकता होता तो ससार के लाखों धनवान मनुष्य दुःखी नहीं रहते। वे धन से सुख खरीद लेते। हमारे द्वारा किए अशुभ कर्मों का और असाध्य रोगों का इलाज धन होते हुए भी नहीं हो सकता। अधिक धन के संग्रह से कुछ लोगों में बुरी आदतें पड जाती हैं और घर में फूट और कलह हो जाती है। चोर, डाकुओं, धोखेबाजों और हत्यारों का भय बना रहता है।

\* 21 सुख मिलता है सातावेदनीय नामक शुभ कर्म के उदय से। हम देखते हैं और सुनते हैं कि हजारों साधारण और गरीब मनुष्य, मजदूर आदि धन के अभाव में भी सुखी हैं। उसका कारण उनके सातावेदनीय कर्म का उदय ही माना गया है।

22 लोगों का यह भ्रम है कि धन के बिना बहुत से काम रुक जाते



उस जीव की इच्छा न होते हुए भी उससे अच्छा या बुरा पुरुषार्थ करवाता है, उसको हितकारी या अहितकारी निमित्त से मिलाता है, उसको क्षणभर में अमीर या गरीब बना देता है, उसे कभी सुखी या कभी दुखी बनाता है और उसके जीवन की सारी सुव्यवस्था या कुव्यवस्था करता है। अतः सुख या दुःख आने पर भी किसी से भी राग-द्वेष नहीं करना चाहिए क्योंकि हमारे अपने कर्मों से ही हमें सुख-दुःख मिलता है।

27 कभी-कभी किसी पूर्वजन्म के पाप से धन का आना रुका हुआ हो तो वर्तमान के शुभदान, पुण्य, धर्म या शुभकर्म करने से धन की वर्षा होने लगती है।

28 "बाहर कुछ नहीं, सब कुछ भीतर।

रक्षक भीतर, भक्षक भीतर।

चित्त-शरीर के भीतर हमारी आत्मा के साथ चिपके हुए सूक्ष्म शुभ कर्म पुद्गल सज्जनों को हमारे सुख का निमित्त बनाते हैं और अशुभ कर्म पुद्गल दुर्जनों को हमारे दुःख का निमित्त बनाते हैं। इसलिए किसी से राग-द्वेष करना भूल है।

29 अप्रत्यक्ष रूप से धर्मात्मा, पुण्यात्मा, सच्चा समाज सेवक उस मनुष्य को समझा जाय जो सामाजिक रीति-रिवाजों में जैसे विवाह आदि में दहेज, रोशनी, बाजा, बहुत बड़ी बारात, बहुत खर्चीले भोजन आदि की व्यवस्था में धन के खर्च को घटाता है जिससे हजारों साधारण मनुष्यों को खर्चा घट जाने से अनीति, पाप और हिंसा द्वारा धन कमाने के लिए मजबूर नहीं होना पड़े।

30 ज्ञानवार्ता-1 शुभ कर्मों के प्रभाव से शत्रु द्वारा की हुई हानि लाभ में बदल जाती है। जैसे-कौरवों द्वारा दिए गए जहर से भीम को लाभ ही हुआ। 2 प्रद्युम्नकुमार के जन्मते ही देवता द्वारा हरण किया जाना और उसे जंगल में भारी पत्थर की शिला के नीचे दबाया जाना प्रद्युम्नकुमार के लिए बहुत लाभ का कारण बना। 3 मुनि गजसुकुमालजी को उनके सिर पर अंगारे रखे जाने का दंड निन्दानवे लाख भव के बाद मिला। 4 अच्छी भावना से की गई सम्यक् सेवा का फल बहुत बड़ी मात्रा में मिलता है। 5 सत्य बोलने के कारण महाराजा हरिश्चन्द्र में तपस्वियों और देवताओं से भी अधिक ताकत थी। 6 अहिंसा, सयम, तप और धर्म पालने वालों को देवता भी नमस्कार करते हैं। 7 अपने माता-पिता, वृद्धों और सतों की सेवा



प्रायः नष्ट हो जाते हैं। 26 अशुभ कर्मों का बंध अहकार के कारण निकाचित बन सकता है। 27 किसी से अपनी अनावश्यक सेवा कराना पाप है और दूसरो की आवश्यक सुसेवा करना धर्म है। 28 कपट से किसी के पास धन नहीं आता। यदि आता है तो ठहरता नहीं, यदि ठहरता है तो वह धन उसे बरबाद करके चला जाता है। 29 शुभ कर्मों के उदय होने पर ही देवता, तान्त्रिक या मित्र आदि सुख के निमित्त बन सकते हैं। 30 मनुष्य चाहे डॉक्टर, इंजीनियर, वकील या बहुत बड़ा व्यापारी आदि कुछ भी बन जावे किन्तु शुभ कर्मों के उदय के बिना उसे स्वस्थ शरीर, सुखद परिवार, शुभचितक, मित्र, मन की शांति, धन और सुख नहीं मिलता। 31 सदा दूसरो का भला करने वाला तीर्थकर बन जाता है। 32 टेलीविजन से आँखे बहुत जल्दी खराब हो जाती हैं। कम से कम बारह फुट दूर बैठकर देखना चाहिए। 33 बड़ो की तथा अनुभवी लोगो की राय लेने वाला अहकार, दुःख व हानि से बच जाता है। 34 मनुष्य अपने परिवार वालो के कर्म को नहीं बदल सकता इसलिए वह व्यर्थ में ही उनके लिए चिंता करता है। 35 गृह कार्य के कार्य का बँटवारा हो जाने से सदस्यो में मन मुटाव नहीं होता। 36 माता-पिता द्वारा घर की जमीन और सम्पत्ति का बँटवारा हो जाने से उनकी सतान में झगडा नहीं होता। 37 मनुष्य के बत्तीस दाँत हैं इसलिए भोजन के हर एक ग्रास को बत्तीस से ज्यादा बार चबा-चबा कर ही खाना चाहिए। दूध आदि पीने की चीजो को धीरे-धीरे पीना चाहिए। 38 जो मनुष्य दूसरो में गुणो को ही देखता है और उनकी सराहना करता है, वह गुणवान और विनयवान बन जाता है।

31 इस पुस्तक के प्रारम्भ में दिए गए आठ पाठो का प्रतिदिन नियमित रूप से स्वाध्याय करने के साथ-साथ उन्हें आचरण में उतारने का अभ्यास कीजिए और बार-बार दोहराइए, चिंतन कीजिए और याद रखिये।

1 चौथा पाठ—“शरीर मेरा नहीं है। यह नाशवान है।” भोजन, रोग, चोर, दुःख-दर्द, तप, उपसर्ग, मनोरजन या खुशी आदि के समय इन्हे याद रखने से दुःखानुभूति-सुखानुभूति, हर्ष-विषाद और राग-द्वेष से मनुष्य बच जाता है और नये कर्म नहीं बंधते।

2 छठा पाठ—परिवार अपना हमेशा बना नहीं रहता। परिवार वालो के साथ या उनके बारे में बातचीत या किसी कार्य के समय इस पाठ को दोहराने और याद रखने से परिवार मोह छूट जाता है।



वनाया है, केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति की है और दूसरो के काम मे बाधा ओर अन्तराय पहुँचाई है, उन लोगो ने अन्तराय कर्म और असातावेदनीय अर्थात् दुख देने वाले अशुभ कर्मो का बध किया है। उनको उनके अशुभ कर्म और अन्तराय कर्म धन और सुख को प्राप्ति नही होने देते।

अन्तराय कर्म करने वालो को बाधा ही बाधा मिलती है। दूसरो के धन लाभ मे अन्तराय डालने वाले को लाभान्तराय के कारण धन का लाभ नही होता। दूसरो के भोजन मे अन्तराय डालने वाले को भोगान्तराय के कारण धन होते हुए भी भोजन की प्राप्ति नही होती है। वह वीमार पड जाता है और कुछ खा नही सकता। दूसरो के शिक्षा और ज्ञान प्राप्ति मे अन्तराय डालने वाले को विद्या और ज्ञान की प्राप्ति नही होती।

अन्तराय कर्म मे महान शक्ति है। तीर्थकर ऋषभदेव को भी बारह महीनो तक निराहार (भूखा) रहना पडा। तीर्थकर महावीर को भी पाँच महीने सताईस दिन तक अभिग्रह पूरा न होने के कारण निराहार रहना पडा। जब तक अन्तराय कर्म की अवधि समाप्त नही होती तब तक दिन-रात कठोर परिश्रम करने पर भी मनुष्य को धन और सुख का लाभ नही होता।

धन और सुख उन्हे मिलता है जो दूसरो को दान, भूखो को भोजन, प्यासो को पानी, वस्त्रहीन को वस्त्र, आश्रयहीन को आश्रय, रोगी को दवा, दुखी को सात्वना देते है और निराश्रित, पीडित, विकलाग, रोगी आदि की सेवा करते है। ऐसे परोपकारी लोगो मे भी जो अधिक पुण्य करते है उनको साधारण पुरुषार्थ करने पर और कभी-कभी बिलकुल पुरुषार्थ नही करने पर भी केवल पूर्वकृत पुण्य के कारण धन और सुख की प्राप्ति हो जाती है। शालिभद्र को उनके पूर्वकृत महापुण्य के कारण परिश्रम किए बिना भी देवलोक से धन आता रहा। धन्नाजी को साधारण पुरुषार्थ से ही हमेशा धन की प्राप्ति होती रही। तीर्थकरो को वार्षिक दान देने के लिए पूर्वकृत महापुण्य के कारण देवो द्वारा बिना किसी परिश्रम के धन प्राप्त होता था।

करोडपति के घर मे जन्म लेने वाला बच्चा जन्म लेते ही करोडो रुपयो का स्वामी बन जाता है। कारकुण्ड जिसका बचपन चाडाल के घर मे बीता, उसको भी आसानी से ही राज्य मिल गया। किसी को वसीयत से और किसी को जमीन मे गडा हुआ धन मिल जाता हे। इस धन की





कर्म सिद्धात का यह अटल नियम है कि मनुष्य दूसरो को सुख या दुख, अन्न या धन जो कुछ जैसा देता है वह वैसा ही सुख या दुख अन्न या धन उसी रूप मे या अन्य किसी रूप मे पाता है और यदि एक देता है तो उस दान के बदले मे सौ या हजार या लाख या करोड गुना पा सकता है। सेठ धनावह के घर मे तीर्थकर महावीर को उडद के बाकले बहराये गये। उसके बदले मे वहाँ सोने की वर्षा हो गई। धन्नाजी को पूर्वभव मे साध्वीजी को खीर बहराने के बदले धन, सुख और सिद्ध पद की प्राप्ति हुई। जो दान देता है, शील पालता है, तप करता है, समता भाव रखता है, शुभ भावना भाता है, स्वाध्याय करता है और दूसरो की सम्यक् सेवा करता है वह उसके बदले मे धन, सुख, स्वर्ग और मोक्ष भी पा सकता है।

**नही रोऊंगा, सिद्ध बनूगा**

आचार्यश्री 1008 श्री नानालालजी म सा ने अपने एक प्रवचन मे फरमाया है कि जीव की जैसी भावना उसकी मृत्यु के समय होती है, वैसी ही उसकी गति बन जाती है। महापुरुष तो अपने गहरे ज्ञान से और मर्यादित जीवन से महाव्रतो का पालन करते हुए अपनी मति और गति सुधार लेते है, किन्तु हम साधारण श्रावक हमेशा बहुत समय तक शरीर की आसक्ति और परिवार मोह छूटने की भावनाओ का स्वाध्याय करे और अभ्यास भी करे तो हमारी भी मति और गति सुधर सकती है। स्वाध्याय सबसे बडा तप है और इसमे भावनाओ को सुधारने की महान शक्ति है।

मनुष्य को साधारणतया उसके अन्तिम समय मे या तो शरीर का कष्ट सताता है या परिवार का मोह बाँध रखता है। शरीर का मोह छोडने के लिए इस प्रकार का चितन किया जा सकता है—“यह शरीर मेरा नही है। इसकी रक्षा होना या नही होना कर्मो के हाथ मे है।” इसके लिए स्वाध्याय इस प्रकार किया जा सकता है—“शरीर के कष्ट व दुखो के समय चिन्ता नही करूंगा। मुनि गजसुकुमाल शरीर कष्ट से नही रोये, वे सिद्ध बने। मै भी सिद्ध बनूगा।”

परिवार का मोह जीव को ससार मे बाँधे रखता है। कभी-कभी नरक मे भी भेज देता है। परिवार का मोह छोडने के लिए इस प्रकार का चितन करना चाहिए—“परिवार बधन किसी को कर्मो के दड से नही बचा सकते।

महासती अजना कहती है कि मेरे अशुभ कर्मों ने उदय में आकर मुझे तक मुझे व मेरे पतिदेव को दूर-दूर रखा। उसके बाद मेरे ससुरालय व पीहर वालो को भी बहका दिया और मुझे घर से निकलवा दिया। धन और धन भी किसी को सातावेदनीय कर्मों के उदय के बिना सुख नहीं सकते। परिवार के और ससार के सभी जीवो को उनके कर्म अपने-अपने कमरो में बंद रखते है। उन कर्मों की आज्ञा के बिना कोई किसी को भी सहायता नहीं कर सकता है।" परिवार की चिंता ओर मोह छोड़ने ही सिद्ध बनता है। इसके लिए यह स्वाध्याय किया जा सकता है—सभी जीवो का भला या बुरा करना या उनको सुख या दुःख देना उन जीवो के कर्मों के हाथ में है। उनके परिवार के हाथ में नहीं है। मैं परिवार छोड़ूंगा और मरुदेवी माता की तरह सिद्ध बनूंगा।"

संक्षेप में अपनी मति और गति सुधारने के लिए इस प्रकार का किया जा सकता है—(क) शरीर कष्ट में और दुःखों में नहीं रोकना सिद्ध बनूंगा। (ख) परिवार मेरे कर्मों की स्वीकृति के बिना मेरी सहायता नहीं कर सकता। (ग) मरुदेवी माता परिवार मोह छोड़कर सिद्ध बनी।

इनके साथ-साथ जीवन को ऊँचा उठाने व सिद्ध-पद पाने के लिए इस प्रकार का चिंतन व स्वाध्याय किया जा सकता है—(क) "दोष मां निमित्त को" इस भावना के स्वाध्याय से मनुष्य क्रोध से मुक्त हो जाता। (ख) स्वयं को अधिक बुद्धिमान् या धनवान् या धर्मात्मा समझने से अहंकारी बन जाता है और वह फूल उठता है। बाहुबलीजी ने अहंकार छोड़ा और वे केवली और बाद में सिद्ध बने। (ग) "गमो सिद्धाय न सिद्धाय" व नवकार का ध्यान करने वाला सब पापों से मुक्त हो जाता और (घ) अपने किए हुए पापों का पश्चान्ताप करने वाला भी अपने पापों का प्रायश्चित्त कर देता है। पश्चान्ताप करने से महासती मृगावतीजी, चण्डरुद्राचार्य और मुनि कूरगडुक को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी।



# ‘समीक्षण ध्यान’ मेरी दृष्टि में

कषाय मुक्ति नवा भाग

समीक्षण ध्यान एव स्वाध्याय सग्रह

1 आचार्यश्री 1008 श्री नानालालजी म सा ने समता दर्शन और समीक्षण ध्यान पर प्रकाश डालकर मानव जीवन का बहुत उपकार किया है। समीक्षण ध्यान का अर्थ है—अपने आत्मा के उद्धार और सुधार हेतु अपने विचारों और कार्यों को देखना, अपने पाप और पुण्य का हिसाब देखना, पिछले किये हुए अशुभ कर्मों से बचते हुए अपने जीवन का नवनिर्माण और सिद्ध पद प्राप्त करने के लिए स्वाध्याय और अभ्यास करना।

2 समीक्षण ध्यानकर्ता का यह लक्ष्य होता है कि उसकी विचारधारा व आचरण ऐसे बन जावे कि उसके शरीर, वचन व मन से दूसरों का बुरा न हो, किसी की हिंसा न हो। उसके किसी भी कार्य से दूसरों को दुःख नही हो, उनका पतन नही हो, उनको सुख मिले और उनकी आत्मा का उत्थान हो।

न ही दुःख हो न ही पतन हो।

किन्तु सुख सग आत्मोन्नति हो।।

इसके साथ ही साथ स्वयं की आत्मा का उत्थान हो और इसके लिए अपनी तरफ से कुछ त्याग करने की जरूरत हो तो वह त्याग करे।

यह अखेद, अद्वेष, अभय, अभिमानहीन, मोहहीन, चिंताहीन, रागहीन बनने की साधना है। वह बाहर की प्रतिकूल या अनुकूल स्थितियों से प्रभावित नही होता और भीतर से विचलित नही होता। वह पूर्ण वीतराग बनने का प्रयास करता है। ये कार्य भी तभी हो सकता है जबकि हम अपने जीवन के लक्ष्य को समझ ले और स्वाध्याय, जप द्वारा उसे पुष्ट बना ले।

3 इस दृष्टि से समीक्षण ध्यान को तीन भागों में बाटा जा सकता है। सर्वप्रथम मानव जीवन के लक्ष्य को समझना और उसे पुष्ट करना। दूसरे नम्बर पर अपने पहले किए हुए अशुभ कर्मों को पश्चात्ताप द्वारा और समतापूर्वक भोग-भोग कर उनको क्षय करना। तीसरे नम्बर पर नये अशुभ



ऋषाय को और मोह-ममता को छोड़ दे। इस कार्य को करने के दो उपाय हैं। प्रथम उपाय है स्वाध्याय और दूसरा उपाय अभ्यास। साधारणतया शरीर की आसक्ति, परिवार का मोह, क्रोध और अहकार इन चारों अवगुणों को छोड़ने से जीवन का नवनिर्माण हो सकता है और वह कभी न कभी सिद्ध पद पा सकता है।

9 शरीर की आसक्ति को छोड़ने के लिए नीचे लिखी भावनाओं का हमेशा वर्षों तक स्वाध्याय, चिंतन करना चाहिए।

(क) दुख में रो मत, भौतिक सुख में फूल मत, सिद्ध बनेगा।

(ख) शरीर बनेगा मिट्टी, मैं बनूंगा सिद्ध।

(ग) मैं भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूंगा, सिद्ध लोक में सिद्ध दशा में अटल अवगाहना प्राप्त करूंगा।

(घ) शरीर कष्ट में, उपसर्गों में रोना छोड़ो, सिद्ध बनोगे। मुनि गजसुकुमाल नहीं रोये, वे सिद्ध बने।

10 परिवार के मोह से मुक्ति पाने के लिए इन भावनाओं का स्वाध्याय किया जा सकता है।

(क) मनुष्य के उपादान में अर्थात् भाग्य में यदि धन और सुख पाने का योग नहीं हो तो उसे परिवार से भी धन और सुख नहीं मिलता है।

(ख) कर्म परिवार वालों को क्षण भर में दूर-दूर कर देता है।

(ग) कौन है अपना ? कोई नहीं अपना।

11 क्रोध से मुक्ति पाने के लिए इस प्रकार का स्वाध्याय किया जा सकता है—दोष मत दो निमित्त को, यह कर्म-फल ही है मिला, निमित्त बेचारा क्या करे।

12 अहकार से मुक्ति पाने के लिए इस प्रकार का स्वाध्याय किया जा सकता है। अहकार बुद्धि को विपरीत बना कर बड़ों-बड़ों का विनाश कर देता है।

बड़ा मत समझो स्वयं को।

बड़ा समझो बड़ों को, गुरुजनो को, संतो को।

13 संक्षेप में समीक्षण ध्यान के लिए प्रतिकूल को अनुकूल और अनुकूल को प्रतिकूल बनाने का स्वाध्याय कीजिए और इसकी कला सतों से सीखिए और उनका अभ्यास कीजिए। रो मत दुख में, फूल मत सुख में, सिद्ध बनेगा। इस भावना का भी हमेशा बहुत देर तक स्वाध्याय कीजिए।



इसी प्रकार अनुकूल को प्रतिकूल समझ कर सुख भोगों से बधने वाले कर्मों से बचा जा सकता है। उस समय इस प्रकार स्वाध्याय करना चाहिए कि—

1 यह सुख सच्चा सुख नहीं है। 2 यह आर्तध्यान है। 3 इन्द्रियों से मिलने वाले सुख से तृप्ति नहीं होती है। 4 उससे तृष्णा बढ़ती है। 5 इससे आत्मा की हानि होती है। 6 इससे आत्मा को लाभ नहीं होता है। 7 इन सुखों में रस लेने से नये कर्म आते हैं। 8 इसमें रस लेने वाला ससार में भटकता रहता है। 9 भौतिक सुखों को सुख नहीं समझकर इनमें रस नहीं लेने वाला ही सिद्ध बनता है।

प्रतिकूल को अनुकूल समझना और अनुकूल को प्रतिकूल समझना समीक्षण ध्यान का महत्त्वपूर्ण अंग है।

सक्षेप में नीचे लिखी भावना को हमेशा बहुत देर तक भाते रहिये—“शरीर की, परिवार की चिंता छोड़ो, ममता छोड़ो, दुःख-दर्द में रोना छोड़ो, भौतिक सुख में फूलना छोड़ो, परिवार और शरीर की चिंता छोड़ो क्योंकि दोनों की रक्षा केवल कर्मों के हाथ में है, ममता छोड़ो क्योंकि आयु कर्म और दूसरे कर्म जीव को परिवार से दूर कर देते हैं, दुःख-दर्द में रोना छोड़ो क्योंकि रोने से दुःख दूर नहीं होता, रोने से नवीन अशुभ कर्म आते हैं और वे बाद में दुःख देते हैं, भौतिक सुख में फूलना छोड़ो क्योंकि यह भौतिक सुख खाज-खुजली की तरह है, जितनी खाज शरीर पर करेगे उतनी ही अधिक खाज करने की इच्छा बढ़ती जावेगी, सुख भोगों से कभी तृप्ति नहीं होती है। इससे नवीन अशुभ कर्मों का बध भी होता है।

“शरीर बनेगा मिट्टी—मैं बनूंगा सिद्ध”

कुछ लोग अपने जीवन के अन्तिम दिनों में पछताते हुए और यह कहते हुए पाये गये हैं—हमने अपना जीवन शरीर के मोह में और सुख भोगों में खो दिया। हमने अपनी आत्मा के साथ ले जाने के लिए कुछ भी नहीं कमाया। इस पछतावे से बचने के लिए आप आज से ही प्रतिदिन कम से कम डेढ़-दो घंटे नीचे लिखे हुए चार सूत्रों का जाप (स्वाध्याय) और चित्त-मनन कीजिए—

1 शरीर बनेगा मिट्टी। इस सूत्र के स्वाध्याय के समय अपनी मृत्यु के बाद अपने शरीर के मिट्टी बन जाने की दिशा में कल्पना भी कीजिए।





दूसरे चरण में यह ज्ञान दर्शन अर्थात् दृढ श्रद्धा का रूप ले लेते हैं और तीसरे चरण में यह दर्शन आचरण में आकर चारित्र्य का रूप ले लेता है। यही मोक्ष का मार्ग है। यह स्वाध्याय आभ्यन्तर तप भी है। इससे कर्मों की निर्जरा भी होती है। एक विद्वान ने लिखा है कि किसी विचार का दस लाख बार जप हो जाने से वह अनन्त काल तक जीव के साथ उसके आचरण में बना रहता है।

“शरीर बनेगा मिट्टी, मैं बनूँगा सिद्ध।” इन दो सूत्रों का अधिक से अधिक स्वाध्याय कीजिए।

## साधना की विधि

बहुत से लोगो ने सतों के बहुत से प्रवचन सुने हैं किन्तु उन्हें उनमें से बहुत कम बातें याद हैं और जो याद हैं उनमें से बहुत कम बातें उनके जीवन में, आचरण में आती हैं। यदि प्रवचन सुनकर उनमें से कुछ बातें घर आकर कॉपी में नोट कर ले तो कभी-कभी इनकी पुनरावृत्ति भी हो जाती है और यदि किसी विचार को साधना के लिए हमेशा कुछ महीनों तक प्रतिदिन कुछ समय तक बार-बार दोहरावे, उसे तोते की तरह रटे, इनकी पर्यटना करे, उसका जाप करे, उसके अर्थ और भावार्थ का चिंतन-मनन करे, उस विचार की दृष्टि से अपने कार्यों और घटनाओं का चिंतन-मनन करे तो यह विचार या भावना उस साधक के अवचेतन मन में जम जाती है, आदत का रूप ले लेती है और कुछ महीनों तक इस साधना को जारी रखने से उस साधक का मनचाहा पूर्ण रूपान्तरण भी हो जाता है।

मुनि अर्जुनमाली ने भगवान महावीर द्वारा दिए गए उपदेश की बातों का इसी प्रकार स्वाध्याय किया और साधना से उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। उन्होंने उन उपदेशों को शायद कुछ-कुछ इस प्रकार सूत्रों में बाँध लिया होगा—“संसार में कोई भी जीव किसी का या मेरा शत्रु नहीं है, मैं अपने ही अशुभ कार्यों का फल पा रहा हूँ, यक्ष के प्रभाव में मेरे आ जाने से, मेरे इस निमित्त से 1141 आदमियों की हत्या हुई है, इसके बदले में मुझे कठोर दंड मिलना चाहिए था, किन्तु ये लोग तो बहुत दयालु दिखते हैं, मुझे थोड़ा-सा दण्ड देकर ही छोड़ देते हैं। मुझे समता रखनी चाहिए। मैं इन्हें दोष क्यों दूँ? समतापूर्वक कष्ट सहन करने से मेरे अशुभ कर्म कट जाएँगे।” मुनि अर्जुनमाली ने छ महीने तक उपर्युक्त विचारों का स्वाध्याय किया होगा और कष्ट सहने का अभ्यास किया होगा। छ महीने की इस साधना से उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई।



निश्चित है। (घ) इसलिए परिवार को अपना समझना और परिवार का मोह करना व्यर्थ है। (छ) परिवार की चिंता छोड़ो, मोह छोड़ो। (ज) मनुष्य के ऊपर, परिवार का कर्जा हो सकता है। उसे सम्यक् सेवा द्वारा अपने परिवार व माता-पिता का कर्जा चुकाना चाहिए। प्राणी मात्र की सम्यक् सेवा करना मनुष्य का धर्म है। (झ) चिंता और मोह को छोड़ने वाला अनासक्त बन सकता है और मरुदेवी माता की तरह मोक्ष पा सकता है।

## शरीर भावना

शरीर भावना इस प्रकार भायी जा सकती है—

(क) यह शरीर अलग है, मैं अलग हूँ, शरीर नाशवान है। यह मेरा नहीं है।

(ख) शरीर पर कष्ट आने के समय इस कष्ट को भूलने के लिए उस समय नीचे लिखी हुई भावना में लीन हो जाना चाहिए—यह कष्ट मेरे कर्मों का फल है, यह मुझे भोगना ही पड़ेगा। इसको भोगते समय समता रखने से ये कर्म कट जाएंगे और चिंता व आर्तध्यान न होने से नवीन अशुभ कर्म नहीं बढ़ेंगे। इससे मेरी आत्मा का कुछ भी नहीं बिगड़ा है, मैंने कुछ भी नहीं खोया है, किन्तु मेरा आत्महित ही हुआ है। कर्मों की निर्जरा हो रही है, मैं मोक्ष के नजदीक पहुँच रहा हूँ, इसलिए शरीर की चिंता छोड़ो व शरीर का मोह छोड़ो, इससे मुनि खन्दक, मुनि गजसुकुमाल आदि की तरह मोक्ष मिलेगा।

उपर्युक्त भावना को और अधिक मजबूत बनाने के लिए 8-10 महीनों तक डेढ़-दो घंटे प्रतिदिन स्वाध्याय और चितन-मनन करना चाहिए। इसी प्रकार भौतिक सुख के समय भी मनुष्य को फूलना नहीं चाहिए, खुशी नहीं मनानी चाहिए किन्तु स्वाध्याय करना चाहिए कि—“यह सुख भी सच्चा सुख नहीं है, इससे अशुभ कर्मों का बंध होगा।” इस भौतिक सुखानुभूति से बचने वाला ही अनासक्त बन सकता है।

धन, परिवार, शरीर की चिंता करने से अशुभ नारकीय कर्मों का बंध होता है। अनासक्ति भावना की तरह समता भावना, बारह भावनाएँ, आत्मध्यान, आत्म-भावनाएँ, कषाय मुक्ति की भावनाएँ, भगवान का भजन आदि भी मोक्ष प्राप्ति के मार्ग हैं।

चिंता छोड़ो, मोह भी छोड़ो।

अनासक्त को मोक्ष मिलेगा।।



कर्म निर्जरा का चौथा उपाय है—शुद्ध ज्ञान, ध्यान में लीन रहना। शुद्ध ज्ञान के चितन से मन अशुद्ध कामों की तरफ नहीं जाता है और इससे ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय भी होता है और मनुष्य के विचार निर्मल (शुद्ध) बनते जाते हैं।

### तीन बातें

स्व आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा ने पद्य की दो पक्तियों में थोड़े शब्दों में जीवन को ऊँचा करने वाला सब धर्मों का सार बता दिया है—

ग्रथ पथ सब जगत् के, बात बतावत तीन,  
राम हृदय, मन में दया, तन सेवा में लीन।

‘राम हृदय’ इन शब्दों का भाव है कि मनुष्य भगवान का अर्थात् सिद्धों का गुणगान, ध्यान और सिद्ध बनने का सकल्प करे तो सिद्धों का ध्यान और सिद्ध बनने का सकल्प करने वाला और इस भावना को दृढ़ बनाने वाला कर्मों की बहुत निर्जरा करता है। इसके साथ-साथ सिद्धों का ध्यान करते हुए और ‘णमो सिद्धाण’ इस पाठ का जप करते हुए मनुष्य ससारी वातावरण से निकलकर आध्यात्मिक वातावरण और शुद्ध ध्यान में लगा रह सकता है। यह भक्ति मार्ग है और परमात्मा की भक्ति करने वाला मुनि दृढ़ प्रहारी की तरह परमात्मा बन जाता है।

इस पद्य में दूसरी बात यह बताई गई है कि “मनुष्य को अपने मन में सब जीवों के प्रति दया रखनी चाहिए।” दया अर्थात् अनुकम्पा, करुणा आत्मा का सबसे बड़ा गुण है। जो मनुष्य सब जीवों पर पूर्ण दयाभाव रखता है, धर्मरुचि अणुगार की तरह क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह से बच जाता है। उसकी आत्मा स्वच्छ, निर्मल और शुद्ध बन जाती है। सभी धर्मों ने दया को, अहिंसा को मनुष्य का प्रथम व सबसे बड़ा धर्म बताया है।

इस पद्य में तीसरी बात ‘तन सेवा में लीन’ बताई गई है। जैन दर्शन में सेवा धर्म को तप से भी ऊँचा स्थान दिया गया है। अगर कोई साधु तपस्या करता है और इससे उसके दूसरे सतों की सेवा करने में बाधा आती हो तो वह तप को छोड़ दे किन्तु दूसरे सतों की सेवा अवश्य करे। दूसरों की सेवा करने से मनुष्य का अभिमान दूर होता है। सेवा वही कर सकता है जो अपने शरीर, परिवार और धन के लोभ को छोड़ता है। सेवा में गृहस्थ और साधु अपनी-अपनी मर्यादाओं का ध्यान रखते हुए अपने आत्म धर्म का और पाँच महाव्रतों का भी पालन कर सकते हैं। इस प्रकार परमा



हे। इसलिए ससार मे किसी को अपना शत्रु समझना या निमित्त को दोष देना भूल है। जो किसी को दोष नही देता है, वह क्रोध और द्वेष से बच जाता है।

3 परिवार या धन किसी जीव को अशुभ कर्मों के दड से नहीं बचा सकता इसलिए परिवार के मोह या धन के लोभ से बचना ही राग से बचना है।

4 राग और द्वेष से बचने वाला ही वीतरागी बनता है और वही मोक्ष पाता है।

5 ससार मे एक जीव का दूसरे जीव के साथ उपादान निमित्त का सम्बन्ध कर्मों के द्वारा, कर्मों के कारण और कर्मों के विधानानुसार बनता है। इसी उपादान निमित्त का सम्बन्ध निभाने के लिए एक जीव दूसरे जीव के साथ पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-बहन, स्वामी-सेवक आदि के रूप मे परिवार मे या मित्र-शत्रु के रूप मे आते है और उपादान निमित्त सम्बन्ध के समाप्ति के साथ ही साथ ससार के दूसरे सारे सम्बन्ध समाप्त हो जाते है और एक जीव का दूसरे जीव से वियोग हो जाता है। परिवार केवल उपादान निमित्तो का एक स्थान पर सयोग ही है। इसके स्वाध्याय से मोह से बचा जा सकता है।

6 मनुष्य कर्माधीन है। जीवो को अपने कर्मों का फल भोगने के लिए उपादानो और निमित्तो के रूप मे प्राय एक परिवार मे आना पडता है। इस प्रकार जन्म के लिए परिवार का चुनाव करना जीव के हाथ मे नही किन्तु उनके कर्मों के हाथ मे है।

7 जब-जब पुराने कर्मों का योग समाप्त हो जाता है और दूसरे नवीन कर्मों का उदय होता है तब-तब जीव को परिवार से अलग होना पडता है या मृत्यु जन्म द्वारा दूसरे परिवार मे जाना पडता है। इस प्रकार मृत्यु और जन्म का समय कर्मों द्वारा साधारणतया नियत होता है।

8 जीव अपने कर्मों का फल जिस उद्योग धन्धे से भोग सके उसे वैसा ही धन्धा करने की या उसे बार-बार बदलने की योजना भी प्राय कर्मों से बनती है, सम्भव है कभी-कभी कोई बहुत हल्के कर्मों वाला जीव इसमे अपनी उच्च भावना के अनुसार परिवर्तन भी कर सके।

9 भिन्न-भिन्न अन्तराय कर्मों के उदय द्वारा जीव के ज्ञान प्राप्ति मे, धन प्राप्ति मे, सुख प्राप्ति मे, स्वास्थ्य प्राप्ति मे बाधाएँ भी कर्मों द्वारा आती





(घ) मैंने पर-हित नहीं किया है। अपना निज कर्ज चुकाया है। इसके लिए अह भाव मन में आना भूल है।

(ङ) बड़ा मत समझो स्वयं को, बड़ा समझो बड़ों को, गुरुजनो को, सतों को।

16 मोक्ष जाने में शरीर आसक्ति ही बाधक है। इसे किसी स्वाध्याय से या तप से दूर करने वाला ही मोक्ष पा सकता है। इसका एक सूत्र यह है—“शरीर बनेगा मिट्टी, मैं बनूंगा सिद्ध।” दो-चार वर्ष हमेशा इसका स्वाध्याय और इसके भावार्थ का चिंतन-मनन करते रहना चाहिए।

17 (क) धन का आना और धन का चले जाना कर्मों के हाथ में है। इसका लोभ करने वाला और इसके लिए चिंता करने वाला मनुष्य कभी सुख नहीं पा सकता।

(ख) जिस घर में छोटे, बड़ों का आदर और उनकी सेवा करते हैं और बड़े, छोटों में अच्छे धार्मिक सस्कार डालते हैं किन्तु उन्हें धार्मिक उन्माद से बचाते हैं, उस घर में सभी लोग यदि उनके पूर्व के अशुभ कर्मों का उदय न हो तो प्रायः सभी सुख पाते हैं।

18 महाहिंसा, महाआरम्भ, महापरिग्रह और बड़े-बड़े हिंसा के कारखानों की योजना बनाना अशुभ कर्म बध का कारण है। जितने दिन तक जिनती बार ऐसे कार्यों का विचार किया जाता रहेगा उतने दिन तक उतनी ही बार अशुभ कर्मों का बध होता रहेगा और उनका उदय होने पर दुःख पाना होगा।

19 इन चार बातों का हमेशा चिंतन करना चाहिए—

(क) किसी को दोष न देने वाला क्रोध से बच जाता है।

(ख) ज्ञान है थोड़ा, शक्ति है थोड़ी, इसका स्वाध्याय करने वाला अहंकार से बच जाता है।

(ग) परिवार और धन किसी को कर्म बध से नहीं बचा सकते। इसका स्वाध्याय करने वाला परिवार के मोह और धन लोभ से बच जाता है।

(घ) “शरीर बनेगा मिट्टी, मैं बनूंगा सिद्ध” इसका स्वाध्याय करने वाला सभी आसक्तियों से बच जाता है और मोक्ष प्राप्त करता है।

20 किया हुआ व्यर्थ नहीं जाता, दिया हुआ व्यर्थ नहीं जाता और मुफ्त में कुछ नहीं मिलता।

21. परमात्मा की भक्ति, दीनों के प्रति दया भावना और सभी जीवों की यथाशक्ति सम्यक् सेवा करना ही मानव मात्र का धर्म है।

सम्यक् सेवा—

सम्यक् सेवा के तीन लक्ष्य और चार विवेक हैं—

जीव को जीविका लायक, ज्ञान प्राप्त करने लायक और मोक्ष प्राप्त करने लायक बनाना। ये तीन लक्ष्य हैं और आत्मा को केवल आत्मा समझना अर्थात् उनको भाई-भतीजा आदि समझकर मोह नहीं करना, निस्वार्थ भाव से सेवा करना, किसी तीसरे जीव को दुख नहीं देना और अपने स्वार्थ का भी कुछ त्याग करना—ये चार विवेक हैं, अपनी आत्मा का ज्ञान होना ही ज्ञान योग है और आत्म भावना भाने वाला मोक्ष प्राप्त करता है। आत्मभावना ये है—मैं ही मेरा हूँ, मुझ आत्मा के सिवाय और कुछ भी मुझ आत्मा का नहीं है। यह शरीर, परिवार, धन आदि मेरे नहीं हैं। इनकी चिंता छोड़ने वाला और मोह छोड़ने वाला मोक्ष पाता है।

22 मनुष्य शुभ कर्म करके बहुत से अशुभ कर्मों को शुभ में बदल सकता है।

23 कपट से धन आता नहीं, अगर आता है तो ठहरता नहीं, यदि ठहरता है तो वह उस व्यक्ति को बरबाद करके चला जाता है।

24 सत्य आचरण और धर्मात्मा व्यक्ति को देवता भी नमस्कार करते हैं, सहयोग करते हैं।

25 शुभ या अशुभ कर्मों का फल यदि उनके करते समय नहीं मिले कभी-कभी बाद में इस जन्म या अलग जन्मों में मिलता है।

26 यदि आप किसी जीव को दुख देना चाहते हैं या गाली देते हैं तो उस व्यक्ति का नुकसान तो उसके अशुभ कर्मों के उदय के बिना नहीं होगा किन्तु आपकी दुर्भावना के कारण आपके अशुभ कर्मों का दंड तो ही जायेगा और उसका अशुभ फल आपको तो मिलेगा ही।

27 दूसरो का केवल हित चाहने वाला भी तीर्थंकर बन सकता है।

28. दोनों वक्त भोजन के समय और रात को सोते समय अपनी भूलों और पाप का पश्चात्ताप करने से कर्म निकाचित नहीं बंधते और प्राय नष्ट हो जाते हैं।

29 दूसरो को गाली देने वाला, दूसरो का बुरा चितन करने वाला और बुरा करने वाला निश्चय मे अप्रत्यक्ष रूप से अपने अशुभ भावो के कारण अपना ही बुरा करता है।

30 दूसरो का हित सोचने वाला और हित करने वाला निश्चय मे अप्रत्यक्ष रूप से अपने शुभ भावो के कारण अपना ही भला करता है और यह तीर्थकर नाम कर्म उपार्जन करने का एक उपाय है।

31 जिस घर मे माता-पिता अधिक धन कमाने की अपेक्षा बच्चो मे अच्छे सस्कार डालने पर ध्यान देते है और बच्चे माता-पिता को सवेरे नमस्कार करते है और माता-पिता मे पूरी श्रद्धा रखते है वह परिवार सुख समृद्धि से परिपूर्ण रहता है।

32 मनुष्य और कुछ नही कर सके तो 'णमो सिद्धाण', णमो सिद्धाण' इसका स्वाध्याय ज्यादा से ज्यादा समय तक करे, यह भी मोक्ष प्राप्ति का साधन है।

33 दो मित्रो मे एक मित्र वेश्या के यहाँ गया किन्तु वहाँ जाकर पश्चात्ताप करने लगा—"हाय ! मै, कहाँ आ गया, धन्य है मेरा मित्र जो धर्म चर्चा सुन रहा है।" दूसरा मित्र सतो के प्रवचन सुनने गया किन्तु वह सोचने लगा कि "मै कहाँ इन रूखे शब्दो को सुनने आ गया। धन्य है मेरा मित्र, जो वेश्या के यहाँ जाकर मनोरजन कर रहा है।" ऐसा सोचकर पहले मित्र ने शुभ कर्मो का उपार्जन किया और दूसरे मित्र ने अशुभ कर्मो का उपार्जन किया। अतः शुभ या अशुभ कर्म अपनी-अपनी भावना के अनुसार बनते है।

34 प्रत्येक धार्मिक क्रिया मे भावना के साथ विवेक रखने से धर्म होता है, किन्तु विवेक नही रखने से अर्थात् जीव रक्षा का ध्यान या यतना नही रखने से या उस क्रिया के परिणाम पर ध्यान नही रखने से पाप भी हो सकता है। जैसे उपवास करना धर्म है किन्तु गर्भवती महिला यदि उपवास करे तो उसे पाप लगता है।

35 दो साधु है, उनमे से एक बीमार है। यदि दूसरा साधु तप करता है और तप के कारण बीमार साधु की सेवा नही कर सकता है या बाधा पहुँचती है तो वह तप धर्म नही है।

36 कभी-कभी मनुष्य के मन मे बहुत निकृष्ट, दुष्ट-भावना आती है जिससे वह बिना कुछ किए हुए ही तन्दुल मत्स्य की तरह ओर प्रसन्नचद्र

मुनि की तरह केवल भावना-भावना से ही सातवीं नारकी के कर्मों को उपार्जन कर लेता है। उस समय यदि वह प्रसन्नचद्र मुनि की तरह पश्चात्ताप कर लेता है तो उन सभी अशुभ कर्मों को उसी समय नष्ट कर सकता है। भावना में इतनी महान शक्ति है कि पश्चात्ताप से प्रसन्नचद्र मुने ने, कुरगडुक ने, चडरुद्राचार्य ने और चंडरुद्राचार्य के नवदीक्षित शिष्य ने केवल भावना-भावना से ही क्षण भर में केवलज्ञान प्राप्त कर लिया था।

37 धार्मिक चर्चा सिर्फ ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य से बहुत कम मात्र में करनी चाहिए। उसके हार या जीत की सीमा तक पहुँचने से वह झगड़े का रूप धारण कर लेती है और पालक व स्कन्दकाचार्य की कहानी बन जाती है। पालक ने धर्मचर्चा में हारने के कारण स्कन्दकाचार्य के पाँच सौ शिष्यों की हत्या करवायी थी।

38. कम बोलो और अधिक सुनो। जो सुनो उस पर विचार करो उसे समझो तथा उसका पालन करो। इसी प्रकार जितना पढ़ो उससे अधिक उस पर चिंतन करो और उससे अधिक स्वाध्याय करके उसे आचरण में उतारो। इसीसे जीवन ऊँचा उठता है।

39 सुख में फूलने का अर्थ यह है कि धन, पद, मान आदि पाकर अपने-आप को बड़ा समझना, जिससे अहं भाव पैदा होता है। अहं भाव का कारण मनुष्य की बुद्धि दब जाती है। सच्ची और सही सलाह को सुनने के लिए उसके कान बंद हो जाते हैं, सही सलाह देने वालों के सामने उसकी आँखें बंद हो जाती हैं। उसके पंख लग जाते हैं, वह जमीन पर नहीं चलता वह आकाश में ही उड़ता रहता है और अंत में तूफानों में घिर जाता है। थक कर गिर पड़ता है। भौतिक सुख में फूलने वाले का पतन हो जाता है।

निम्नलिखित महाहिसक चीजों से बचिए

मोटे मुलायम चमड़े के लिए जीवित पशुओं के ऊपर उबलता घोंसला डालकर उन्हें बेतों से पीटा जाता है तथा जीवित अवस्था में ही उनका खाल खींच ली जाती है। बढिया जूतों के लिए गर्भिणी मादा पशुओं का कर्करके उनके गर्भ के बच्चों को निकाल कर उनका वध किया जाता है। असली रेशम जीवित कीड़ों को पानी में उबालकर प्राप्त किया जाता है। लोरिस जानवर की आँखें पीस कर सौंदर्य प्रसाधन बनाए जाते हैं। हंस पक्षी बनाने के बाद जिस लोशन का उपयोग किया जाता है उसकी जाँच पिग नामक जानवर की त्वचा पर की जाती है। सील मछली के त्वचा

सिलाई घोप दी जाती है ताकि बेदाग व अखण्ड खाल निकल आए। इसके बच्चे के रोओ से कोट आदि बनते हैं। कस्तूरी मृग व सीवेट को कस्तूरी के लिए मारा जाता है। मृग की नाभि से कस्तूरी मिलती है। इसके चर्म से चप्पले, पर्स, खिलौने बनते हैं। कछुए के अवयवों से प्राप्त चर्बी से तेल बनाया जाता है जो सौंदर्य प्रसाधन की तरह काम में लेते हैं। सॉप के गॉल व्लडर से शराब, दवाई बनाई जाती है। मधुमेह—डायबिटीज की इन्सुलिन नामक दवा भेड, बैल, गाय के अग्न्याशय से प्राप्त होती है।

शेम्पू की जाँच खरगोश की आँखों में की जाती है। टिड्डों को चर्बी में मिलाकर चॉकलेट बनाई जाती है। दीमक को तलकर मसालों में बघारा जाता है। मेढक की टाँगे विदेशों में बड़ी स्वादिष्ट मान कर खाई जाती है। हाथी दाँत की बनी चीजे, मछली के तेल से बनी हुई दवाइयाँ, चरबी से बनी साबुन, शहद आदि हिंसा से बनी हुई वस्तुएँ हैं। भैंस की खाल में चाँदी को पीसकर वर्क तैयार की जाती है।

अशुभ कर्मों को क्षय करने का सरल तरीका है—सिद्धों का ध्यान, स्वाध्याय और सेवा।

### समीक्षण ध्यान के कुछ सूत्र

- 1 शरीर मेरा नहीं है, मैं (आत्मा) भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूँगा।
- 2 रो मत, रो मत, दुख में रो मत सिद्ध बनेगा।
- 3 फूल मत भौतिक सुख में, सिद्ध बनेगा।
- 4 बड़ा मत समझो स्वयं को, बड़ा समझो बड़ों को।
- 5 दोष मत दो किसी को।
- 6 'कोई लेनदार कोई देनदार।  
परिवार नहीं होता अपना।'
- 7 शरीर बनेगा मिट्टी, मैं बनूँगा सिद्ध।

ऊपर लिखी हुई भावनाओं में और अनित्य आदि बारह भावनाओं में भी जिन भावनाओं का महीनो और वर्षों तक स्वाध्याय अर्थात्—चित्तन और जाप होने से उनमें साधक की अटूट श्रद्धा पैदा हो जावेगी और ये भावनाएँ साधक के आचरण में स्वतः उतर जावेगी। इन भावनाओं से पूर्णतया भावित होने वाला जीव अवश्य ही मोक्ष पाता है। जरूरत है एक-एक भावना को पाँच-पाँच, सात-सात बार जपने की।



# अभय बनूंगा, सिद्ध बनूंगा

कषाय मुक्ति : दसवा भाग

चितन की कुछ भावनाएँ—

{1 अद्वेष, 2 अखेद, 3 अभय,  
4 अराग, 5 अलोभ, 6 अमान }

- 1 अभय बनूंगा, सिद्ध बनूंगा  
दोष किसी को कभी न दूंगा  
क्रोध द्वेष से बचा रहूँगा।
- 2 दुख-दर्द में दुखी न होता  
अशुभ कर्म समता से धोता।
- 3 मौत का मैं भय छोड़ूंगा  
अभय बनूंगा, सिद्ध बनूंगा।
- 4 किया स्वयं का स्वयं ही पाता  
परिवार भी कुछ काम न आता।
- 5 लोभ से यदि धन है मिलता  
जग में कोई दीन न रहता।
- 6 मान-बडाई ईर्ष्या भावे  
वह नर कैसे मोक्ष में जावे।
- 7 अभय बनूंगा, सिद्ध बनूंगा  
णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाण।

उपर्युक्त भावनाओं का जितना अधिक स्वाध्याय और चितन किया जाएगा उतना ही शीघ्र मनुष्य सिद्ध पद पाने का अधिकारी बनेगा और जितना कम स्वाध्याय किया जाएगा उतना ही देरी से वह मोक्ष जाएगा, इन भावनाओं में श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए चितन-मनन की सामग्री नीचे दी जा रही है—



## (1) अद्वेष भावना—क्रोध मुक्ति

हम अपने ही कर्मों का फल पाते हैं। हम अपने ही अशुभ कर्मों का अशुभ फल पाते हैं, इसमें निमित्त का कोई दोष नहीं है। दूसरे जीव को दोष देना अज्ञान है। यदि हम किसी को दोष नहीं देंगे तो हमारे अन्दर किसी भी जीव के प्रति द्वेष भावना पैदा नहीं होगी। हम क्रोध से बचेगे, दुर्मान से बचेगे, दूसरों के प्रति दुर्व्यवहार से बचेगे, ससार के सभी जीवों के साथ हमारे मन में द्वेषभाव, शत्रुभाव भविष्य के लिए पैदा होना बंद हो जाएगा। सारे ससार के जीवों के लिए हमारे मन में मैत्री भावना आ जावेगी और अनेक अशुभ कर्मों का आना बंद हो जाएगा, मुनि गजसुकुमाल मुनि स्कन्दक, सेठ सुदर्शन आदि ने किसी को दोष नहीं दिया, वे सिद्ध बने।

## (2) अखेद भावना—दुःख चेतना से मुक्ति

मनुष्य सासारिक पीडा में या अनेक प्रकार की प्रतिकूल अवस्थाओं में रोता है, विलाप करता है, आर्तध्यान में डूबता है, दूसरों के प्रति क्रोध और भावहिसा के विचार अपने मन में उठाता है और अनेक अशुभ कर्मों का उपार्जन करता है। यदि वह कर्म सिद्धांत आदि के चिंतन में लग जाता है तो अपने दुःख-दर्द को भूलकर अशुभ कर्मों का आना बंद कर सकता है। वह विचार सकता है कि यह दुःख नहीं है। यह मेरे कर्मों का फल है। इनको समतापूर्वक भोगने से ही मोक्ष मिलेगा। यदि मैं शुभ चिंतन में या शुभ कार्य में लग जाऊंगा तो अशुभ कर्मों का आना भी रुक जाएगा। इस दुःख और पीडा से मेरी आत्मा का कुछ बिगड़ता नहीं है। इससे मेरी आत्मा का अहित नहीं होता है। इससे आत्मा का हित ही होता है। कर्म कटते हैं और मैं मोक्ष के नजदीक पहुँचता हूँ। इस विचारधारा से समता की प्राप्ति होगी और अशुभ कर्म नहीं आ पावेंगे।

## (3) अभय भावना—मौत के भय से मुक्ति

यह देखा गया है कि ससार में मौत का भय सबसे बड़ा भय है और इस भय से भयभीत मनुष्य अनेक प्रकार की द्रव्य और भावहिसा के रिक्त में डूबा हुआ बहुत लम्बे समय तक महामोहनीय अशुभ कर्मों का उपार्जन करता है। कस ने देवकी के आठवें पुत्र द्वारा अपने मृत्यु की भविष्यवाणी सुनाई बहुत वर्षों तक बहुत भयकर अशुभ कर्मों का उपार्जन किया। शत्रु रावण को बचाने के लिए अनेक मनुष्य महापाप में लगे रहते हैं किन्तु उन मनुष्यों

मृत्यु भय से मुक्त हो जाता है वह तीर्थकर महावीर की भाँति, सेठ सुदर्शन की भाँति, भक्त प्रह्लाद की भाँति द्रव्य और भावहिंसा के विचारों से दूर रहता हुआ अपनी आत्मा को नवीन कर्मों के बंध से मुक्त रखता है। सेठ सुदर्शन को अभया महारानी ने धमकी दी, वे सूली पर चढ़ाये गए, हरिणी वेश्या ने उनको घर में बंद कर दिया, व्यन्तरी ने कपड़ों में आग लगा दी लेकिन सेठ सुदर्शन मृत्यु भय से मुक्त थे, इसलिए उन्होंने मृत्यु की किसी भी धमकी से डरकर अशुभ कर्म का बंध नहीं किया।

यदि मनुष्य इसका बार-बार चिंतन-मनन करे तो मृत्यु का भय हट सकता है।

मनुष्य कई बार बीमार पड़ता है और हर बार मृत्यु भय से भयभीत होकर अशुभ कर्मों का बंध करता है किन्तु उसको यह याद रखना चाहिए कि रोग असातावेदनीय कर्मों से आता है और मृत्यु का इस कर्म से कोई सबंध नहीं है। चाहे वह कितनी ही बार बीमार पड़े उसे मृत्यु आ नहीं सकती। मृत्यु तभी आयेगी जबकि आयु-कर्म समाप्त होगा। इसलिए रोगों के आने पर मृत्यु के भय से अशुभ चिंतन नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार आयु-कर्म के समाप्त हुए बिना शत्रु भी हमें मार नहीं सकता, बल्कि कभी-कभी तो शत्रु द्वारा मारने का प्रयत्न हमें लाभ पहुँचा देता है। प्रद्युम्नकुमार को मारने की देवता ने चेष्टा की किन्तु उसको लाभ हुआ। भीम को मारने की दुर्योधन ने कोशिश की किन्तु भीम को लाभ ही हुआ। यदि आयु-कर्म के समाप्त हुए बिना कोई किसी को मार सकता तो बहुत से निर्दयी लोग भले आदमियों को जीने ही नहीं देते।

रोग, शत्रु, चोर, पशु, पक्षी, शरीर की कमजोरी आदि किसी के द्वारा आयु-कर्म समाप्त हुए बिना जीव मारा नहीं जा सकता। अतः ऐसे मौकों पर आर्तध्यान को छोड़कर शुभ ध्यान में लीन होना चाहिए। कुछ-कुछ ऐसा स्वाध्याय किया जा सकता है—“मौत का मैं भय छोड़ूँगा, अभय बनूँगा, सिद्ध बनूँगा” मनुष्य इसमें पूर्ण श्रद्धा रखकर स्वाध्याय व चिंतन-मनन करे तो अभय बनना असम्भव नहीं है।

#### (4) अराग भावना—परिवार मोह से मुक्ति

मुक्ति प्राप्त करने में परिवार का मोह भी बहुत बाधक होता है, इस सबंध में इस पुस्तक में आगे चिंतन की विशेष सामग्री दी गई है। साधारणतया यह विचार और चिंतन परिवार मोह को घटा सकता है—



मान बडाई ईर्ष्या भावे  
वह नर मोक्ष मे कैसे जावे।

दूसरा चितन इस प्रकार किया जा सकता है—

अह बम है, विस्फोटक है, महाघातक है।

बचकर रहना, चोट लगेगी, उठ न सकोगे।।

## जीवन की भौतिक बाते

कोई भी जीव किसी भी दूसरे जीव के कर्मों के फल में हेर-फेर नहीं कर सकता। उसे अपने कर्मों का दड स्वयं को ही किसी-न-किसी रूप में भोगना ही पडता है। वह बचना चाहे तो भी उसकी बुद्धि उसके कर्मों के दड से प्राय बचने नहीं देती। क्योंकि—

बुद्धि वैसी ही बन जाती

जैसी कर्मों की गति है चाहती।

इस दृष्टि से मनुष्य के जीवन की प्राय मोटी-मोटी भौतिक घटनाओं का नियंत्रण मनुष्य के कर्मों के हाथ में होता है। कुछ लोग तो बचने की कोशिश ही नहीं करते किन्तु कुछ बड़े-बड़े मनुष्य भी बहुत कम परिवर्तन कर पाते हैं। ये घटनाएँ इस प्रकार हैं—

1 जीव की गति—वह क्या बनेगा देव या पशु या मनुष्य।

2 परिवार—जिन लागों के साथ उसे ये कर्म भोगने हैं, उन लोगों के परिवार में जन्म लेना पडता है और यदि उसे परिवार आगे बदलने पडेगे तो उसका भी निर्णय कर्मानुसार निश्चित हो जाता है।

3 आयु—यह नया शरीर कितने समय तक टिकेगा।

4 कुछ छोटी-मोटी बाते—उसके साथी, उसके रहने के स्थान आदि-आदि।

5 विद्या—शिक्षा मिलेगी या कम मिलेगी या नहीं मिलेगी।

6 विवाह—किस परिवार में होगा या वह अविवाहित रहेगा या दीक्षा लेगा या नहीं लेगा आदि-आदि।

7 धधा—व्यापारी बनेगा या कहीं नौकरी करेगा या मजदूरी करेगा और अपने कर्मों को किस तरह भोगेगा।

8 अमीरी-गरीबी का निर्णय—उसके उपादान में निमित्त से जैसा जितना धन आना है वैसा और उतना ही धन आवेगा और अशुभ कर्मों के योग से जो धन जाना है वह जायेगा।



वने, सब सिद्धों को नमस्कार है। मैं किसी को दोष नहीं दूंगा, क्रोध नहीं करूंगा, मैं दुःख में नहीं रोऊंगा, मैं सिद्ध बनूंगा।

3 जन्मू स्वामी भौतिक सुख में नहीं फूले। नहीं फूले वे सिद्ध बने। सब सिद्धों को नमस्कार है। मैं सुख में नहीं फूलूंगा, मैं सिद्ध बनूंगा।

4 बाहुबलीजी ने अह छोड़ा, अह छोड़ा वे सिद्ध बने, सब सिद्धों को नमस्कार है, मैं अह छोड़ूंगा, सिद्ध बनूंगा।

5 अह वम है, विस्फोटक है, महाघातक है। अह छोड़ा वे सिद्ध बने, सब सिद्धों को नमस्कार है।

नोट—परिवार का मोह छोड़ना मुक्ति को देने वाला है, किन्तु जब तक परिवार में रहे तब तक परिवार की सम्यक् सेवा करके परिवार का कर्ज चुकाना मनुष्य का परम धर्म है।

उपर्युक्त भावनाओं में प्रत्येक भावना का दो-दो, तीन-तीन लाख बार पर्यटन अर्थात् स्वाध्याय और चितन-मनन करेगा वह किसी दिन सिद्ध पद प्राप्त करेगा।

## मगल भावना

वीर नहीं बचा सके दो सतों को उनके कर्मों के दड से, कृष्ण नहीं बचा सके यादवों को, उनके कर्मों के दड से। परिवार किसी को नहीं बचाता, उसके कर्मों के दड से।

## परिवार मोह से मुक्ति

मनुष्य के सिद्ध पद प्राप्ति में सबसे बाधक है परिवार मोह। इस मोह को ढीला करने का सर्वोत्तम उपाय है स्वाध्याय। अधिक स्वाध्याय करने से परिवार मोह का क्षय होता है।

एक राजा ने एक कैदी से पूछा—“तुम्हारे शरीर में इतना बल है कि तुमने लोह की भारी बेलियों को क्षण भर में ही तोड़ दिया तो फिर तुम कैद में इतने महीने कैसे रुकें रहे ?” इस पर कैदी ने कहा—“महाराज ! मुझे आपके जेल की छड़ों ने नहीं बाँध रखा था। मैं परिवार मोह की बेलियों में बंधा हुआ था। मुझे भय था कि यदि मैं इन बेलियों को तोड़कर निकल जाऊंगा तो मेरा परिवार सकट में पड़ जाएगा। आप मेरी जगह उन्हें दड देंगे। इसलिए जेल की छड़ों को तोड़कर नहीं भागा।”

महाशानी गौतम स्वामी को महावीर स्वामी ने कहा— हे गौतम ! तुमको मेरे ऊपर प्रशस्त रोग है। यही तुम्हारे वेदलजान प्राप्ति में बाधक है



और आराम न मिले, चाहे उसे दूध, फल और पौष्टिक पदार्थ आदि तो दूर रहे भरपेट सादा भोजन भी पूरी मात्रा में नहीं मिले। आदिनाथ भगवान् वाहुवलीजी एक-एक वर्ष निराहार रहे। आज के मनुष्य भी दो-दो, तीन-तीन वर्ष तक एक-एक महीने में पाँच-पाँच पचौले का तप करते हुए भी जीवित और स्वस्थ रह जाते हैं।

यदि मनुष्य को परिवार का सहयोग नहीं मिले, सेवा करने वाला नहीं मिले, चाहे उसे अकेला ही रहना पड़े तो भी शरीर का कुछ नहीं बिगड़ता। शत्रु द्वारा की हुई उसे मारे जाने की योजना भी सफल नहीं होती जब तक कि मनुष्य का आयु-कर्म समाप्त नहीं हो जाता। पाण्डव, भीम, प्रद्युम्नकुमार, भक्त प्रह्लाद, सेठ सुदर्शन आदि को मारने की योजनाएँ सफल नहीं हुईं क्योंकि उनका आयु-कर्म समाप्त नहीं हुआ था। परिवार का षड्यंत्र, धन की हानि, मान की हानि और मनुष्य को मिलने वाली अनेक असफलताएँ मनुष्य को नहीं मार सकती जब तक आयु-कर्म समाप्त नहीं हो जाता।

मनुष्य को मौत के भय से बचने के लिए चिंतन-मनन करना चाहिए जिससे अंतिम समय में वह सद्भावनाओं के साथ मरता हुआ दुर्गति में नहीं जावे और सम्भव हो तो भावना पूर्वक सथारा भी ले सके।

चिंतन में प्रथम स्थान कर्म सिद्धांत को देना चाहिए, असातावेदनीय और अन्तरायकर्म दोनों ही आयु-कर्म के समाप्त हुए विना मौत को नहीं ला सकते, मनुष्य को अपने पहाड़ के समान दुःख को भी रेत के समान तुच्छ मानना चाहिए। अभय भावना की साधन से दुर्भावनाओं और हिंसा आदि पापों से बचा जा सकता है, इससे शरीर का मोह छूटता है और सभी चिंताएँ दूर होती हैं।

“जवाहर विचार सार” में आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा ने तीन बातें बताई हैं—प्रथम परमात्मा का ध्यान, दूसरा अपने मन में दुःखियों और जीव मात्र के लिए दया भावना रखना और तीसरा यथाशक्ति प्राणीमात्र की सम्यक् सेवा में अपने शरीर को लीन रखना चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि चिंता और अनुकम्पा में जमीन आसमान का अन्तर है। जहाँ दूसरे मनुष्य पर ममता है उसके लिए चिंता करना चिंता और मोह है किन्तु जहाँ पर दूसरे जीव को आत्मा केवल आत्मा ही समझा जाता है उसके लिए चिंता करना चिंता और मोह नहीं बल्कि अनुकम्पा है, चिंता ज्वाला है, अनुकम्पा शीतल जल है, चिंता जहर है अनुकम्पा अनृत है जो मनुष्य को अमर, आनन्दघन और अभय बनाता है और मोक्ष पहुँचाता है।





## हम क्या करे

मोक्षार्थी को यह समझ लेना चाहिए कि विचारो और भावनाओ मे महान शक्ति है और शुभ विचार करके हम आसानी से मोक्ष पहुँच सकते हैं। मनुष्य जितनी बार कोई विचार करता है उतनी ही बार वह शुभ या अशुभ विचारो का बध या क्षय कर लेता है।

एक मनुष्य बीस दिन तक दिन मे पाँच-पाँच बार किसी मनुष्य की हत्या करने का विचार करता है तो वह उस मनुष्य को यदि नहीं मारे तो भी एक सौ बार हत्या करने के विचारो से आने वाले अशुभ कर्मो का बध कर लेता है। यदि एक मनुष्य किसी दूसरे दु खी मनुष्य को सात्वना देने या धैर्य बधाने या मदद देने का विचार करता है तो यदि वह उसे मदद नहीं दे सके तो भी इस विचार से आने वाले शुभ कर्मो का उपार्जन करता है ओर यदि उसकी भावना अति तीव्र हो तो वह क्षणभर मे अनेक वर्षो के अशुभ कर्मो का क्षय कर लेता है और केवलज्ञान भी प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार अनेक मकान बनाने के विचारो का या हिसक कारखानो का या महाआरभ या पाप के कार्यों का विचार करता है तो वह कुछ भी नहीं करता हुआ भी तन्दुल मत्स्य की तरह या कालसौरिक कसाई की तरह महापाप के अशुभ कर्मो का बध कर लेता है। प्रसन्नचद्र मुनि ने क्षणभर मे सातवीं नरक मे ले जाने वाले कर्मो का उपार्जन किया और विचारधारा बदलने से केवल पश्चात्ताप द्वारा उन सभी कर्मो को क्षणभर मे नष्ट करके केवलज्ञान प्राप्त किया।

आपको जितना अधिक-से-अधिक समय मिले उस समय मे इस भावना का स्वाध्याय अर्थात् पर्यटन और चितन करे—“सिद्ध भगवान है, वे अशरीरी है, वे अतिसूक्ष्म है, वे दिखाई नहीं देते, वे ज्ञानस्वरूप है, वे ज्ञान के भण्डार है, वे सिद्ध लोक मे, सिद्ध दशा मे, अटल अवगाहना प्राप्त करके, आनन्दघन बनकर विराजे हुए है। उनको, उन सब सिद्धो को नमस्कार हे, नमस्कार है, नमस्कार है। णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाण।

इस विचार का या भावना का हमेशा अधिकाधिक चितन करने वाला अपने पापो का क्षय करता है और वह अत समय मे यदि इसी ध्यान मे जमा रहकर मरण प्राप्त करता है तो वह इसी जन्म मे या भविष्य मे कभी-न-कभी अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर सकेगा।

## मधु बिन्दु

1. परिवार या अपनो का कर्ज उतरा, वे अलग हुए, अलग हुए उन भावना के बार-बार चितन से मोह नष्ट होने लगता है।

2. शरीर अलग है, मैं अलग हूँ, शरीर नाशवान है, मेरा नहीं है : आत्मा हूँ, मैं सिद्ध बनूंगा” इस भावना के बार-बार चितन करने से शरीर मोह नष्ट होता है। इसका विशेष विवरण ‘ध्यान एक अनुशीलन’ नाम पुस्तक में मिलेगा।

### अहं से मुक्ति

“अहं को छोड़ो, विनय को धारो, सिद्ध बनोगे”  
अहं बम है, विस्फोटक है, महाघातक है,  
बचकर रहना, चोट लगेगी, उठ न सकोगे।  
अकड न करना, झुककर रहना, सुख पाओगे।  
रावण अकडा, कौरव अकडे, सुख नहीं पाये।।  
भौतिक शक्ति है बहुत ही थोड़ी।  
देह कष्ट से पता है चलता।।  
कर्म दण्ड से बच नहीं सकता।  
जो चाहता सो कर नहीं सकता।। टेरे।। अहम् .  
ज्ञान है थोडा, बहुत ही थोडा।  
जीवन में यह उतर न पाया।।  
मन में भारी अह भरा है।  
ऊँचा-ऊँचा उछल रहा है।। अहम्  
अह में मानव भूल है करता।  
भले बुरे का ज्ञान न रहता।।  
अह बुद्धि विपरीत बनाता।  
बडो-बडो को अहं गिराता।। अहम् .  
बडा स्वयं को नहीं समझता।  
गुरुजनो का विनय जो करता।।  
उनकी आज्ञा पालन करता।  
वही किसी दिन सिद्ध है बनता।। अहम्.

# मोक्ष मार्ग का पथिक

कषाय मुक्ति : ग्यारहवां भाग

## 1 कषाय मुक्ति

दया भावना मन मे रखता ।  
सेवा करता वह सिद्ध बनता ॥  
पश्चात्ताप से पाप है कटता ।  
सिद्ध ध्यान से सिद्ध पद मिलता ॥1॥  
चोरी हत्या महापापो को ।  
प्रहारी ने पौंच मास मे ॥  
पश्चात्ताप अरु प्रभु भजन से ।  
काट-काट कर सिद्ध पद पाया ॥2॥  
क्रोधी मरकर सर्प है बनता ।  
अभिमानी मुर्गा है बनता ॥  
माया कपट से औरत बनता ।  
लोभी मृगा लोढा बनता ॥3॥  
खोट मिलाता, चोरी करता ।  
झूठ बोलता, धोखा देता ॥  
साहू बन धन लूट मचाता ।  
अति लोभी दुर्गति मे जाता ॥4॥  
आत्म ध्यान से मोह है हटता ।  
हिंसा पाप लगने से बचता ॥  
दान जो देता वह सुख पाता ।  
विनयवान भगवान है बनता ॥5॥  
माता-पिता की सेवा करता ।  
देवलोक मे देव वह बनता ॥

अह छोटता वह सिद्ध बनता।

कषाय मुक्त है सिद्ध पद पाता।।6।।

## 2. सिद्धों का अरूपी ध्यान

(क) "णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाणं। सभी सिद्धो को मैं नमस्कार करता हूँ।"

सिद्धो के अरूपी ध्यान का यह बहुत ही सरल और साधारण है। इसको इस प्रकार भी किया जा सकता है—“णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाणं। नमस्कार है सब सिद्धो को” या “सब सिद्धो को नमस्कार है।

इस ध्यान को करते समय जो आत्माएँ सिद्ध बनीं हैं उनको याद करके, उनका नाम लेकर, उनके आत्म प्रदेशो को लोक के अग्रभाग में अटल अवगाहना में होने की कल्पना करके यह कहना चाहिए—“सिद्धो को मैं नमस्कार करता हूँ।” इस समय उनके अरूपी शरीर को लोक के अग्रभाग में होने की कल्पना करनी चाहिए। ‘मैं नमस्कार करता हूँ’ इन शब्दो को बोलते समय हाथ जोड़कर, शीश झुकाकर वदन करना चाहिए जिससे मन की एकाग्रता हो सके। मन झुधर-उधर नहीं दोड़े।

(ख) इस ध्यान को करते समय जो मनुष्य सिद्ध बने ह, उनको याद करके, उनके अरूपी होने की कल्पना करके उनको हाथ जोड़कर याद करके, तथा गुणगान करना चाहिए। सभी तीर्थंकर सिद्ध बने हैं। अरिष्टनेत्र भगवान के परिवार के प्राय सभी सदस्य सिद्ध बने हैं। स्कन्धकावर्णन में पाँच सौ शिष्य सिद्ध बने हैं। दान देने वाले सुमुख गाथापति, धर्मचन्दनबाला, शील पालने वाले विजय सेठ, विजया सेठानी, सेठ दुर्गा तपस्या करने वाली काली, महाकाली, सुकाली आदि की तपस्या करके समता विभूति गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदायी, मुनि अर्जुन, मुनि स्कन्दक आदि पश्चात्ताप करने वाले, प्रसन्नचन्द्र मुनि, चण्डिका आदि की मुख्य घटनाओ को याद करके इन सबको शीश झुकाकर नमस्कार करना चाहिए। यह भावना रखनी चाहिए कि सभी सिद्धो को मैं नमस्कार करता हूँ, वदन करता हूँ। इस प्रकार का सिद्धो का ध्यान ही मोक्ष को मोक्ष का अधिकारी बनाता है। सिद्धो का ध्यान इस प्रकार भी किया जा सकता है—“सिद्ध भगवान, सिद्ध भगवान।

आत्म द्रव्य है, अति सूक्ष्म है, अगम अगोचर अजर अमर है।  
वे सर्वज्ञ है, शक्तिमान है, आनन्दघन हैं, निराकारा हैं।  
सब सिद्धो को नमस्कार है।”

(ग) समता विभूति आचार्यश्री नानालालजी म सा सिद्धो के अरूपी ध्यान पर बहुत जोर देते हैं। इस ध्यान से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। जैसा कि नमस्कार मंत्र में बताया गया है। दृढ प्रहारी तो प्रभु का भजन करने से चार मोटी हत्याओं के पाप से न्यारा हो गया था। जो जैसा विचार करता है, वह वैसा ही बन जाता है। फिर सिद्धो का ध्यान करने वाला यदि सिद्ध बन जावे तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ?

आचार्य भगवन् ने समीक्षण ध्यान के अन्दर “मैं सिद्ध बनूंगा” इस भावना पर बहुत जोर दिया है। इसका स्वाध्याय इस प्रकार किया जा सकता है—“मैं भीतर हूँ, मैं भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूंगा। सिद्ध लोक में, सिद्ध दशा में, अटल अवगाहना प्राप्त करूंगा। आनन्दघन और अभय बनूंगा।

‘सब सिद्धो को मैं नमस्कार करता हूँ और मैं सिद्ध बनूंगा।’

सिद्धो के आठ गुणों का, पन्द्रह भेदों का, अटल अवगाहना का, अमूर्त भाव आदि का चिंतन करते हुए चित्त को एकाग्र करना चाहिए। इन भावनाओं का हजारों, लाखों बार जाप और चिंतन-मनन करना चाहिए। यह सामायिक या बिना सामायिक भी, सोते हुए या बैठे हुए, कहीं भी, कभी भी किया जा सकता है।

2 (क) सिद्धो के ध्यान के अलावा आत्म भावना भी केवलज्ञान प्राप्ति की साधना है। वह इस प्रकार भायी जा सकती है—

आत्मा हूँ मैं, देह नहीं हूँ  
मैं अमूर्त हूँ, चेतन हूँ।  
मैं अवद्य हूँ, मैं अदाह्य हूँ,  
अजर, अमर हूँ, शाश्वत हूँ॥  
ज्योतिपुज हूँ, ज्ञान रूप हूँ  
मैं चेतन हूँ, जीवन हूँ।  
निराकार हूँ, निर्विकार हूँ,  
आत्मा हूँ, मैं चेतन हूँ॥

(ख) शरीर अलग है, मैं आत्मा अलग हूँ। शरीर नाशवान है, यह मेरा नहीं है। मैं आत्मा हूँ, मैं सिद्ध बनूंगा। मैं ही मेरा हूँ, मुझ आत्मा के सिवाय मुझ आत्मा का ओर कुछ भी नहीं है। शरीर, परिवार धन ये मेरे नहीं हैं।



जीव को नाच नचाता है उस समय यह परिवार को शत्रु बनाकर मनुष्य की हत्या तक करवा देता है।

(घ) परिवार मोह से एक भयकर हानि हो सकती है। परिवार मोह में मरने वाला जीव महेशदत्त के माता और पिता की तरह कुतिया एव पाडा (भेंस का बछड़ा) बन सकते हैं। वे बिल्ली, चूहा, कौआ आदि तिर्यच बनकर वही चक्कर लगाते हैं किन्तु परिवार मोह को बिलकुल छोड़ देने वाले मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। अतः 'मोह छोड़ूंगा परिवार का' इस भावना का लाखों करोड़ों बार जप और चितन-मनन करना प्रत्येक प्राणी के लिए लाभदायक है।

(ङ) परिवार मोह छोड़ने का अर्थ यह नहीं है कि परिवार को छोड़ दिया जाय। जब तक मनुष्य परिवार में रहता है तब तक उसे परिवार की सरल और निस्वार्थ भाव से सम्यक् सेवा करनी चाहिए।

(च) 'मैं सिद्ध बनूंगा' इस भावना को जपने वाला और इस सकल्प को दृढ़ बनाने वाला कभी-न-कभी अवश्य ही सिद्ध बनता है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जसे जैसा विचार करता है वह वैसा ही बन जाता है। 'सब सिद्ध बनें' इस भावना का जाप करने वाला अपनी मंगल भावना से स्वयं मंगल रूप बन जाता है। ऐसा साधक दुर्भावनाओं से, दूसरों के प्रति अनिष्ट चितन से, द्वेष और क्रोध भाव से और अनेक प्रकार के अवगुणों से बच जाता है और वीतराग दशा प्राप्त करता है।

#### 4 समता आचरण

परिवार मोह छोड़गा सिद्ध बनूंगा	रो मत दुख दर्द में	फूल मत सुख व मनोरजन में	अह छोड़ो
--------------------------------------	-----------------------	-------------------------------	----------

(क) 'परिवार का मोह छोड़ूंगा' महेशदत्त की माता परिवार मोह के कारण कुतिया बनी व पिता भेंसा बने। नन्दन मणिहार मेढक बना। एक राजा अपनी रानियों के मोह के कारण मरकर उन रानियों के मल-मूत्र के कुण्ड में लाल रंग का कीड़ा बना। चक्रवर्ती की पटरानी मोह के कारण पति वियोग में छ महीने विलाप करती हुई छटे नरक में गई। "मैं परिवार छोड़ूंगा व सिद्ध बनूंगा।" परिवार मोह छोड़ने से मरुदेवी माता सिद्ध बनी।





(ड) 'बाहुबलीजी ने अह छोडा, वे सिद्ध बने।' अह छोडने के लिए "बडा मत समझो स्वय को—तप मे, ज्ञान मे, धन मे, दान मे और धार्मिक वातो मे।" अहकार से बहुत बडे-बडे लोगो और महात्माओ का पतन हुआ है। इससे शुभ कर्मो का फल मिलना रुक जाता है। अह छूटने से वाहुबलीजी को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। 'अह बम है, यह महा विस्फोटक है।'

(च) इन चारो भावनाओ का कोटिश चितन करने से अवश्य लाभ होगा। यह भौतिक सुख मीठे जहर के समान है, किम्पाक फल के समान है, जो देखने और खाने मे तो अच्छा लगता है किन्तु खाने वाले की मृत्यु का कारण बनता है।

## 5. क्रिया और भावना

मनुष्य जो भी करता है उसके मूल मे या उसे कराने वाली जो भावना होती है, उसी शुभ या अशुभ भावना के अनुसार उसे शुभ या अशुभ फल मिलता है। क्योकि बिना विचार या भावना के कोई काम नही होता। अत अशुभ विचार से किसी भी क्रिया का फल, दान या सेवा का फल भी अशुभ हो जाता है। अत साधु, परिवार या शत्रु की सेवा करने वाला या किसी को कुछ देने वाला अपनी भावना के अनुसार शुभ या अशुभ कर्म बाधता है। अत परिवार की भावना मे भी मोह छोडकर परिवार वालो को केवल आत्मा समझकर अनुकम्पा भाव से सेवा करने वाला ही कर्म निर्जरा और पुण्य का अधिकारी बन सकता है। जो व्यक्ति दुर्भावना से, अपने मन मे दु ख करता हुआ जो भी कार्य करता है वह अशुभ कर्म उपार्जित करता है। अत प्रत्येक कार्य अनुकम्पा भाव से करना चाहिए।

## 6. क्रिया का फल

(क) भारतवर्ष के बौद्ध भिक्षु धर्मबोधि ने चीन देश के सम्राट बुश से कहा—'राजन् ! तुम कहते हो कि मैने हजारो धार्मिक स्थान बनवाये। धर्म का खूब प्रचार किया, ग्रथ लिखवाये। धर्म पर खूब पैसा खर्च किया, लेकिन तुमने यह सब काम प्रसिद्धि की भूख, कीर्ति का लोभ होने के कारण किये। इससे तुम्हारा नाम फैला। तुम्हारे अहकार की तुष्टि हुई। इससे ज्यादा तुम्हें कुछ मिलना नही है। अहकार से खर्च किए हुए धन से मोक्ष नहीं मिलता।

(ख) साधु सुपात्र होता है फिर भी भगवान महावीर को के बिना दिए हुए दान से पूर्ण सेट को महापुण्य की प्राप्ति

.....

दान की भावना रखने वाले जीर्ण सेठ को भगवान महावीर को दान देने, अवसर नहीं मिलने पर भी केवल भावना से ही पुण्य की प्राप्ति हुई।

(ग) अनुकम्पा से किए हुए काम दान, धर्म तथा सेवा आदि काम सबसे श्रेष्ठ, महापुण्य को देने वाला और मोक्ष प्राप्ति का साधन हो सकता है। अपंग, बीमार, लंगडा, अधा आदि की सेवा की जा सकती है। अनुकम्पा है।

(घ) दूसरो को शिक्षा देना, जीविकोपार्जन के योग्य बनाना, मोक्ष मार्ग पर चलाना आदि महान सेवाएँ हैं। परिवार वालो का भी मोक्ष छोड़कर निःस्वार्थ केवल आत्मा समझकर उनकी सेवा करना महापुण्य को देने वाला है। परिवार में रहता हुआ परिवार की सेवा नहीं करने वाला महान धर्म उपाार्जन करता है। जिसके ऊपर परिवार का भार है, उस भार को नहीं निभाने वाला और परिवार को असहाय छोड़ने वाला अशुभ कर्म और पुण्य का उपाार्जन करता है।

(ङ) भौतिक कामो में सौदा पटने पर दलाली मिलती है। आध्यात्मिक कामो में सौदा पटे या नहीं पटे, भावना के कारण दलाली मिल ही जाती है।

## 7. आशीर्वाद और श्राप

साधारण मनुष्यो का यह भ्रम है कि दूसरो का दिया हुआ अशुभ और श्राप भला और बुरा कर सकता है। लेकिन आशीर्वाद या श्राप किसी का भला या बुरा नहीं हो सकता। मनुष्य के जिस भले या दुःख करने पर उसको श्राप या आशीर्वाद मिलता है, उस भले या दुःख गुप्त अदृश्य फल के कारण ही मनुष्य का भला या बुरा होता है। आशीर्वाद या श्राप से जिसको वह दिया जाता है उसको लाभ या हानि नहीं मिलती। किन्तु श्राप या आशीर्वाद तो देने वाले का ही बुरा या भला कर सकता है। बच्चो की गालियो से और अपराधियो के श्राप से अध्यापको या शिक्षक का कुछ नहीं बिगडता। धनवानो या शक्तिशाली पुरुषो के बल से श्राप होकर उनको जो आशीर्वाद दिया जाता है, उस आशीर्वाद से उनको जमीदारों या आतक फैलाने वाले पुरुषो का भला नहीं हो सकता।

शिक्षा प्राप्ति के साथ-साथ सेवा करते हुए पुण्य कमाओ। पुण्य या इस जन्म के पुण्य से विद्या और धन आते हैं। पुण्य के बिना विद्या और धन प्राप्त नहीं हो सकते। भगवान महावीर का स्पष्ट उपदेश है कि

किया स्वयं का स्वयं ही पाता।  
पर का दिया कुछ काम न आता।।

## 8. दिया हुआ व्यर्थ नहीं जाता

जब मनुष्य अपने परिवार, पड़ोसी, शत्रु, भिखारी या किसी सस्था को कुछ सहयोग देता है तो उस दाता को अपनी भावना के अनुसार सुख या दुःख के रूप में उस दिए हुए (दान) का बदला अवश्य मिलता है। वह बदला, यदि जिसे दिया गया है, उससे नहीं मिले तो किसी अन्य निमित्त से मिल जाता है और कभी-कभी प्रकृति से या उसके अपने शुभ कर्मों की सहायता से अपने-आप ही मिल जाता है। प्रह्लाद, प्रद्युम्नकुमार, भीम, पाण्डव आदि को उनके किए हुए पुण्य के प्रभाव से सुख ही मिला तथा उनकी रक्षा हुई। सेठ सुदर्शन विना किसी रक्षक की सहायता के अर्जुनमाली के मुद्गर से बच गया। दूसरों का भला करने वाला मनुष्य अपने शुभ कर्मों के प्रभाव से करोड़पति के घर जन्म लेकर या वसीयत से या गोद लेने से धनवान बन जाता है। शुभ कर्मों से मनुष्य को स्वस्थ शरीर, सहायक मित्र, ऊँचा पद व सुखी जीवन आदि भौतिक व आध्यात्मिक ऐश्वर्य मिलता है। दूसरों को दुःख देने वाले तथा अशुभ कर्म करने वाले रावण को, बाली को और कौरवों को दुःख ही मिला। अभय रानी, हिटलर आदि ने आत्महत्या कर ली। पापी मनुष्य अपने अशुभ कर्मों के कारण रोगी और विकलांग शरीर पाता है। वह जल में डूब सकता है, अग्नि में जल सकता है। वह हमेशा शत्रुओं से घिरा रहता है तथा दुःख ही पाता है। इसलिए कहा गया है कि—“दिया हुआ व्यर्थ नहीं जाता।” उसका बदला सुख या दुःख के रूप में अवश्य मिलता है।

किसी से लिया हुआ भी मुफ्त में नहीं मिलता है, उसका बदला अवश्य चुकाना पड़ता है। इस बदले में निमित्त की प्रधानता नहीं रहती। निमित्त के बिना भी उपादान की किस्मत में जो लिखा होता है, वह उसे अवश्य मिलता है। जैसे कबूतर आदि पक्षियों को चुगने के लिए अनाज डाला जाता है और घर से निकाली हुई गायों को खाने के लिए घास डाला जाता है। उसका फल भी हमें अन्य रूप में मिलता है। प्रायः दूसरे निमित्तों से और दूसरे ही रूप में तथा कभी-कभी इसी जन्म में और कभी भविष्य के जन्मों में मिलता है। वे फल पाने की दृष्टि से उपादान ही बनते हैं। इसमें निमित्तों का विशेष महत्त्व नहीं रहता। उपादान ही प्रधान होता है।



## स्वास्थ्य चर्चा

स्वस्थ रहने के लिए मनुष्य को इन बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिए—

भोजन का प्रत्येक ग्रास (कवा) छोटा हो, उसको गिन-गिन कर बत्तीस बार चबा करके खाना चाहिए। सूर्य का प्रकाश रहते हुए (छिपने से पहले) किया हुआ भोजन लाभदायक और स्वास्थ्यप्रद होता है। अधिक चटपटा, खट्टा भोजन स्वास्थ्य खराब करता है। तली हुई चीजे जैसे—पूड़ी, कचोरी, पकौड़ी, मिठाइयाँ आदि पेट को खराब करती हैं। जिनको दूध से गैस बनती हो वह थोड़ा-थोड़ा करके तीन-चार बार में दूध पीवे। जितनी भूख हो उससे  $\frac{1}{4}$  (एक चौथाई) भोजन कम खाये। कभी-कभी उपवास या ऊनोदरी तप करे। यह स्वास्थ्य के लिए जरूरी है। दवाइयाँ कम से कम लेनी चाहिए।

## जीवनोपयोगी चर्चा

1 जे न मित्र दु ख होहि दु खारी।

तिन्ही विलोकित पातक भारी।।

जो अपने मित्रों अर्थात् परिवार के लोगों सम्वन्धियों, पड़ोसियों आदि के दु ख में दु खी नहीं होता अर्थात् उन पर दया नहीं करता और उनकी तन, मन, धन से सहायता नहीं करता उस पुरुष को कभी सिद्ध पद प्राप्त नहीं हो सकता। वही मनुष्य परमात्मा बनने का अधिकारी है जो अपने शत्रु से भी बदला लेने की बात सोचना तो दूर रहा, किन्तु अपने दया भावना से, नि स्वार्थ त्याग से और सेवा से उसका भला करने की बात सोचता है और करता है।

2 बुरा काम करते हुए यदि धन आता है तो उसे उस बुरे कर्म का फल सोचना भूल है। वह किसी पहले हुए कर्म का ही फल है। इस वर्तमान कर्म का बुरा फल आगे कभी इसके उदय में आने पर ही होगा। इसलिए हमेशा अच्छा कर्म ही करना चाहिए।

3 आलसी मनुष्य को कोई अपने पास नहीं रखना चाहता। गरीबी हमेशा उसको घेरे रहती है। प्रथम मीठी बोली, दूसरा मिलनसार स्वभाव, तीसरा सत्य भाषण, चौथा ईमानदार तथा पाँचवा परिश्रम—ये पाँच गुण होने से मनुष्य ऊँचा उठता है।

4 लोभी को कुछ धन देकर, क्रोधी को हाथ जोड़कर,

.....



दूसरी ओर स्वर्गीय कवि श्री अमरचंदजी म सा ने जैनत्व की झॉकी नामक पुस्तक में समवाय के पाठ में साफ लिखा है कि चाहे कुछ भी करो, होता वही है जो नियति को स्वीकार है। श्री कानजी ऋषि ने 'क्रमबद्ध पर्याय नामक पुस्तक में स्पष्ट लिखा है कि अगले जन्म स्थान का रिजर्वेशन (आरक्षण) हुए बिना मरना भी मनुष्य के हाथ में नहीं होता। भव स्थिति पके बिना मोक्ष की प्राप्ति भी नहीं होती। भव्य-अभव्य द्रव्य नहीं हो सकता और अभव्य भव्य नहीं हो सकता। प्रकृति की बहुत-सी बातें सूर्य, चन्द्र आदि नक्षत्रों की गति की तरह नियत हैं। वृद्धालोचना में लिखा है कि पुद्गल स्पर्शना टलती नहीं है।

एक बहेलिये (चिडीमार) ने एक पक्षी को पकड़ा और एक केवलज्ञानी को झूठा साबित करने के लिए पूछा कि मैं इसे मारूंगा या छोड़ूंगा। तब केवलज्ञानी ने जवाब दिया कि तुम इसे मार भी सकते हो और छोड़ भी सकते हो। इन सब बातों से यही प्रकट होता है कि कुछ बातें नियत और कुछ अनियत हैं। हम सर्वज्ञ नहीं हैं इसलिए नियतिवाद और अनियतिवाद के झगड़े को छोड़कर कषाय आदि को जीतने के लिए निश्चय दृष्टि में विश्वास रखते हुए व्यवहारवाद का पालन करना चाहिए। इससे हमें दया भावना आदि की वृद्धि में सहायता मिलती है और हम कर्म काटकर मोक्ष मार्ग पर चल सकते हैं।

### पाप का पश्चात्ताप

किसी से झूठ बोलकर, धोखा देकर, चोरी करके या दवाव आदि से धन या कोई चीज लेना बहुत बड़ा पाप है। इस प्रकार लिया हुआ धन या चीज प्रायः अपने साथ धोखेबाज के घर या घर से अधिक धन किसी न किसी रूप में लेकर निकल जाता है। धोखा देने वाले को धोखे से ली हुई चीज या उसकी कीमत असली मालिक को पश्चात्ताप करते हुए लौटा देनी चाहिए। यदि लौटाई नहीं जा सके तो उसके फल रूप में दृढ प्रहारी और अर्जुनमाली की तरह पश्चात्ताप करते रहना चाहिए जिससे उस किए हुए पाप का फल हल्का हो सके या नष्ट भी हो सकता है।

### सत्-सकल्प

सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा, ममता अरु इच्छा छोड़ूंगा।

समता रखकर, कर्म काटकर, सिद्धों का पद प्राप्त करूंगा।।

पश्चात्ताप से, सिद्ध ध्यान से, सब पापों का नाश करूंगा।





## ज्ञेय, हेय, उपादेय

1 कर्मों के सामने इच्छा नहीं चलती।

2 पुद्गल स्पर्शना अर्थात् होनहार नहीं टलती। किसी को दोष मत दो, क्रोध मत करो।

3 लेन-देन बाकी नहीं रहता।

तब परिवार अलग हो जाता।

4 दया भावना—निस्वार्थ भाव से दूसरे का भला करने का विचार—दया भावना है। भला करना सेवा है, धर्म है और यह मोक्ष का मार्ग है।

5 लोभ और लूट—(क) धनवान बनने की इच्छा लोभ है। (ख) वेतन पाते हुए भी अपने काम के लिए जनता से और अधिक धन लेना भी लूट है। (ग) साहूकार कहलाते हुए चीजों में मिलावट, चोरी, झूठ, कपट द्वारा या बिलकुल मुफ्त में लोगों का धन छीनना या शोषण करना और अपनी चीज की उचित से बहुत अधिक कीमत लेना लूट है।

6 मुफ्त में न तो कुछ आता है और न कुछ पाता है। पति-पत्नी को भी अपना-अपना कर्ज, कर्म तराजू पर तोलकर किसी-न-किसी जन्म में चुकाना पड़ता है। मुफ्त में लेना व खाना छोड़ो, देना व खिलाना तथा दया करना सीखो।

7 पश्चात्ताप और प्रभु भजन से पाप नष्ट होता है और मोक्ष मिलता है।

8 दूसरों की आलोचना व निन्दा करना छोड़ो। कम बोलो, मोन रखो।

9 अह से धर्म का फल शिथिल पड़ जाता है तथा पाप का फल निकाचित और भयकर हो जाता है।

10 "माता-पिता की सेवा करता।

देवलोक में देव वह बनता।।"





नहीं है।" चौथा सूत्र है—“मैं किसी की अशुभ आलोचना, निंदा या विकथा नहीं करूंगा।”

(ग) इन ऊपर वाले सूत्रों से दुर्भावना और अशुभ कर्म आने रुक जायेंगे और साधक मुफ्त में ही तन्दुल मत्स्य या कालसौरिक कसाई बनने से बच जाएगा। यह स्व गणेशाचार्य जी की अद्वेष भावना है।

4 (क) कषाय को छोड़ने के लिए कुछ उपाय नीचे दिये हैं—प्रथम उपाय है कि मनुष्य को कषाय से प्रायः पशु का जन्म मिलता है। उसे यह जाप करना चाहिए—“क्रोधी मरकर सर्प है बनता।” दूसरा सूत्र है—“अभिमानी मुर्गा है बनता।” तीसरा सूत्र है—“माया कपट से मादा (औरत) है बनता।” मल्लिनाथ भगवान ने तीर्थकर होते हुए भी मादा अर्थात् औरत रूप में जन्म लिया था। चौथा सूत्र है—“लोभी मृगा लोढा है बनता।” मृगा लोढा के हाथ पैर नहीं थे, उसका जीवन बहुत दुःखी था।

(ख) क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार प्रकार के अशुभ कामों से दुःख पाने वाले लोगों के जीवन की कथा सतो व साध्वियों से पूछिये और कषाय मुक्ति की भाग एक से ग्यारह तक की पुस्तकों में पढिये।

(ग) अपने अडोस-पडोस में रहने वालों को कषाय से होने वाले दुःखों से अवगत कराइये।

5 (क) मोह छोड़ने के लिए और अराग भावना को मजबूत बनाने के लिए यह चिंतन-मनन करिए। प्रथम शरीर मोह को छोड़ने के लिए विचार करिये कि मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदायी, मुनि अर्जुनमाली, मुनि खन्दक जिनकी चमड़ी उतारी गई और स्कन्धाचार्य के 500 शिष्य जिनको पालक द्वारा घाणी में पैला गया उन्होंने शरीर का मोह छोड़ा और वे सिद्ध बने।

(ख) अराग भावना को मजबूत बनाने और वीतरागी बनने के लिए परिवार मोह को छोड़ना जरूरी है। यह याद रखिए कि केवल परिवार को छोड़ने से या अपने शिष्यों को छोड़ने से मनुष्य वीतरागी नहीं बनता। छोड़ना है केवल मोह को और जब तक परिवार में रहें तब तक परिवार को श्री जवाहराचार्य के विचारों के अनुसार परिवार को भी तिराने वाली जहाज समझकर धारिणी रानी की तरह इनकी अनुकम्पा भाव से सेवा करें। कूर्म पुत्र केवली की तरह अनुकम्पा भाव से, दया भाव से परिवार की पूरी सेवा



तप करूंगा या अमुक वस्तु खाना छोड़ूंगा। मैंने भूल से या जान बूझकर अमुक व्यक्ति से इतने रुपये या सामान ठगे, मैं महापापी हूँ, हो सकेगा तो उसके रुपये लौटाऊंगा। मैंने अमुक व्यक्ति की नौकरी छोड़ाई, हो सकेगा तो मैं उसकी सहायता करूंगा। अति लोभी को दुर्गति में जाकर भारी दंड सहना पड़ता है। मैंने रिश्वत ली। मैंने मुफ्त में अमुक व्यक्ति का धन खाया, पाप किया। दूसरे का धन मुफ्त में या धोखा देकर या बहुत अधिक ब्याज लेकर मैंने एक प्रकार से दूसरो का खून चूसा। मैं इन सबका पश्चात्ताप करूंगा और करता हूँ।

10 कषाय मुक्ति ग्यारहवा भाग में 'ज्ञेय, हेय, उपादेय' इस शीर्षक में दस नियम दिये हैं उन्हें हमेशा पढ़िये।

11 दूसरो पर व्यवहार में दिखते हुए अन्याय को रोकने के लिए यथाशक्ति, यथा मर्यादा, अनुकम्पा भाव से शुभ प्रयास करना हमारा परम और पवित्र धर्म है।

12 धन के आठ नियम—1 उपादान रूप में आने वाला धन अवश्य आता है। 2 अशुभ कर्म से जाने वाला धन रुक नहीं सकता। 3 धन के बिना भी शुभ कर्मों के उदय से सुख मिलता है। 4 धन होते हुए भी सभी अशुभ कर्मों से दुःख मिलता है। 5 धन होते हुए भी योग नहीं हो तो काम नहीं बनता। 6 धन नहीं होते हुए भी होने वाले काम के लिए कहीं से धन आता है तथा वह काम अवश्य बनता है। 7 धन दान-पुण्य से ही आता है। 8 धन का लोभी सर्प बनकर उसकी रखवाली करता है।

13 कभी-कभी कर्ज चुकाने के लिए पशु का जन्म लेना पड़ता है।

14 आम के पेड़ व दान का शुभ फल बहुत समय तक मिलता है।

15 पति-पत्नी को भी अपने लेन-देन का हिसाब किसी-न-किसी रूप में चुकाना पड़ता है।

सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा।

ममता अरु इच्छा छोड़ूंगा।।

समता रखकर कर्म काट कर।

सिद्धो का पद प्राप्त करूंगा।



2 दूसरा सूत्र इस प्रकार है—जीव पर अनेक दूसरे जीवों का अनेक प्रकार का ज्ञात व अज्ञात ऋण चढा हुआ है। उसे नि स्वार्थ भाव से दया, दान और सम्यक् सेवा द्वारा उतारो। मुनि गजसुकुमाल ने निन्यानवे करोड जन्मों के बाद अपना आग से जलाने वाला पाप समता-भाव से काटकर मोक्ष प्राप्त किया था। वैदिक सस्कृति में भी बताया गया है कि जीव माता-पिता आदि का ऋणी बने बिना जन्म नहीं ले सकता। 'ऋणम् वर्ड जाय मान।'

3 अपने सभी पापों को बार-बार याद करके पश्चात्ताप द्वारा तथा प्रभु भजन द्वारा काट लो।

4 सिद्धों का ध्यान करो। सिद्धों के ध्यान से दृढ प्रहारी ने उसी एक जन्म में सब हत्या के महापापों को भी काटकर प्रभु भजन से मोक्ष प्राप्त किया था।

5 'सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा' इस सकल्प को जाप द्वारा मजबूत बनाओ। इस सकल्प से सिद्ध पद प्राप्त होता है।

### चितन-मनन की चार बातें

1 परिवार नहीं किन्तु पश्चात्ताप कर्म दड से बचा सकता है। दृढ प्रहारी ने गाय, ब्राह्मण, गर्भवती स्त्री और बालक की हत्या का पाप पश्चात्ताप और प्रभु भजन से नष्ट किया और मोक्ष गए। अर्जुनमाली ने 1141 मनुष्यों की हत्या का पाप पश्चात्ताप और समता से काटा और मोक्ष गए।

2 (क) परिवार, पिता, पुत्र आदि कोई भी कुछ भी मुफ्त में नहीं देता। उसका बदला पहले या बाद में, किसी जन्म में तथा किसी-न-किसी रूप में चुकाना ही पडता है।

(ख) दूसरों का धन मुफ्त में खाने वालों को तथा चोरी या उचित से अधिक कीमत लेकर लाया हुआ धन मनुष्य को बरबाद कर देता है या उस मनुष्य को मृगा लोढा अर्थात् बिना हाथ पैर के शरीर वाला मनुष्य बनाता है। मुफ्त में खाना छोडो। दया भाव से दूसरों का उपकार करो।

3 परिवार मोह में मरने वाली महेशदत्त की माता कुतिया बनी, उसका पिता भैसा बना। मोह में मरकर मनुष्य पशु भी बनता है।

4 परिवार मोह छोडने वाली मरुदेवी माता सिद्ध बनी।



## मुफ्त में कुछ नहीं मिलता

संसार में किसी भी जीव को किसी भी जीव से यहाँ तक कि मनुष्य में भी एक दूसरे को मुफ्त में कुछ नहीं मिलता। उनके लेना-देना का हिसाब कर्मों के नियमों के अनुसार कर्मों के अरूपी बही खातों में स्वयं अरूपी लेखनी के द्वारा अंकित हो जाता है और वह लेना-देना वही रूप में या बदले हुए रूप में कर्मों के माप-तोल के अनुसार चुकाना पड़ता है। इसमें छूट नहीं होती किन्तु वह कर्म पश्चात्ताप द्वारा नष्ट किया जा सकता है।

कोई मनुष्य पहले, कोई बाद में दाता और पात्र अर्थात् निमित्त या उपादान या साहुकार और आसामी (कर्जदार) बनता रहता है। मुफ्त में कुछ आता है और न कुछ जाता है।

समझदार मनुष्य मोक्ष की इच्छा रखने वाला धन आने पर मुफ्त में नहीं और खो जाने पर रोता नहीं है। वह जानता है कि जितना धन मुफ्त में लिखा है उतना तो ईमानदारी से भी मिल जाएगा। इसलिए मुफ्त में खाना छोड़ो। मुफ्त में जरूरतमंदों को खिलाना सीखो। दान देना चोरी, ठगी, लेना-देना आदि का बदला पहले या बाद में लेना-देना पड़ता है। अतः धन प्राप्त करने के लोभ से बचना चाहिए तथा दान, सेवा आदि से अपना अज्ञात कर्जा चुकाना चाहिए। यही धर्म और मोक्ष का मार्ग है।

### मोक्ष मार्ग में रुकावटें

1 जो मनुष्य अपनी भूल को स्वीकार नहीं करता और दूसरे समझदार लोगों से पूछकर उसमें सुधार नहीं करता वह मोक्ष नहीं पाता।

2 जो मनुष्य धन के लोभ में दूसरों को अनीति से लूटता है वह मोक्ष नहीं जा पाता।

3 जो मनुष्य अपने धन, बल, बुद्धि और मान का दिया-प्राप्त करने के लोभ में उसकी बुद्धि का दिवाला निकल जाता है और उसका अहंकार नष्ट नहीं पहुँचने देता।

## मोक्ष का दरवाजा

पश्चात्ताप से पाप कटता है तथा मोक्ष का दरवाजा खुलता है। पश्चात्ताप इस प्रकार किया जा सकता है—“अरे भाई मोहन ! मुझे क्षमा करो, मैंने बहुत पाप किए हैं। मैंने तुम्हे ठगा है, धोखा दिया है। उसके लिए मुझे धिक्कार है। मुझे माफ करो।

बहुत दिनों तक बार-बार इस प्रकार पश्चात्ताप करने से पाप नष्ट होते हैं। दृढ प्रहारी, अर्जुनमाली आदि ने इसी प्रकार पश्चात्ताप करते हुए अपने पूर्वकृत पापों को नष्ट किया और मोक्ष पद को प्राप्त किया।

किसी चितन की पुनरावृत्ति होना भूल नहीं है यह स्वाध्याय तप का अंग है।

### भगवान महावीर के तीन सिद्धांत

1 महाहिंसा से बचो और अहिंसक बनो। मकान बनाने, जमीन खुदवाने, चुने आदि के भट्टे, भुजिया आदि बनवाना, बैल गाड़ियाँ किराये पर देना, दास-दासी का व्यापार आदि ये महाहिंसा के कार्य हैं। कसाईखाना, पशु-वध आदि महाहिंसा के कार्य हैं। इनसे बचो और अहिंसक बनो।

2 महापरिग्रह से बचो। जीवन की आवश्यकता पूरी हो उसी में सतोष रखो। अधिक धन, जमीन, मोटर गाड़ियाँ आदि मत रखो। अल्प परिग्रही बनो।

3 एकान्तवाद धर्म नहीं है। सब कुछ नियत नहीं है। मैं जो सोचता हूँ या कहता हूँ या करता हूँ वही ठीक है इस एकान्तवाद को छोड़ो और अनेकातवादी बनो।

सब कुछ नियत नहीं है। मैं जो करता हूँ, कहता हूँ वह गलत भी हो सकता है। दूसरों की बात सुनो, सोचो, समझो, यह अनेकातवाद है। यदि सभी कुछ नियत होता तो कर्मों के दो भेद निकाचित और अनिकाचित क्यों किए जाते ? सर्वज्ञ नियत को नियत रूप में और अनियत को अनियत रूप में देखते हैं।



विचारणीय बात है। अपने सूत्रों को सोते-जागते, उठते-बैठते हर समय स्मरण कीजिये। दिन में समय निकाल कर कई बार दोहराइये।

प्रारम्भिक तैयारी—दुःख चेतना, सुख-चेतना एव आर्त-रौद्रध्यान से निवृत्ति की साधना के लिये अपने अवगुणों की सूची बनाइये। इनके सबध में गहरा अध्ययन एव चिंतन मनन कीजिये। इन अवगुणों को दूर करने के लिये कुछ सक्षिप्त छोटे वाक्य या सूत्र बना लीजिये। उन सूत्रों को कुछ महीनों तक बार-बार दोहराते रहने और जीवन में उतारने से आत्मा निर्विकार बन सकेगी।

साधना का प्रारम्भ—मन बहुत चंचल है। मन को वश में करने के लिये कई प्रकार के ध्यान किये जाते हैं। किन्तु आत्म-शुद्धि के लिये साधना करने वाले प्राणी को प्रारम्भ से ही किसी एक दुर्गुण-निवृत्ति की साधना के लिये अच्छा यह रहेगा कि प्रारम्भ से ही उस दुर्गुण के विरोधी भाव का अध्ययन, चिंतन, ध्यान, जप, स्वाध्याय एव बार-बार स्मरण किया जावे और पूर्ण सजग रहकर जीवन की प्रत्येक छोटी या बड़ी सभी घटनाओं में उस दुर्गुण से बचा जावे।

सर्वप्रथम क्रोध निवृत्ति हेतु समता के किसी सूत्र का ध्यान करना प्रारम्भ किया जावे। इसका एक सूत्र है—“चोट, रोग या गरीबी को अपने पाप-कर्म का फल मानो। दुःख में समता रखते हुए दुःख को पाप-कर्म काटने की दवा मानो। उसमें निमित्त बनने वाले को पाप-कर्म काटने की दवा देने वाला डॉक्टर मानो।”

कुछ दिनों या महीनों की साधना के बाद क्रोध-निवृत्ति में सफलता मिल ही जावेगी। सफलता देरी से मिले तो भी धैर्यपूर्वक साधना में लगे रहे।

क्रोध निवृत्ति के बाद किसी दूसरे विकार निवृत्ति की साधना प्रारम्भ कर दीजिये और उसमें सफलता मिलने के बाद किसी तीसरे अवगुण-निवृत्ति का प्रयास प्रारम्भ करे। इस प्रकार एक के बाद दूसरे की ओर दूसरे के बाद तीसरे की निवृत्ति में लगे।

साधना में सफलता के लिये जितनी आवश्यकता एकाग्रता की है उससे भी ज्यादा महत्त्व स्वाध्याय के सूत्रों की पुनरावृत्ति का है। “जितनी पुनरावृत्ति, उतनी ही सफलता।”

.....



कुछ भी ज्ञान नहीं होते हुए भी केवल देहात्म-भेद-ज्ञान की अनुभूति से कि जिस प्रकार छिलके से दाल अलग होती है उसी प्रकार शरीर से आत्मा अलग है, उन्हें केवलज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति हो गई थी।

शरीर और आत्मा दोनो रूप से एक ही शरीर के रूप में दिखाई देने पर भी वास्तव में दोनो अलग-अलग हैं। शरीर तो पानी, मिट्टी, आग, हवा और आकाश—इन पाँच तत्त्वों से बना है। आत्मा अति सूक्ष्म अमूर्त चेतन द्रव्य है जो अशरीरी और पूर्णतः ज्ञान स्वभावी और आनन्दघन है। यह अजर, अमर, अविनाशी है, जिसका छेदन, भेदन आदि नहीं हो सकता।

बहुत से लोगो को शरीर और आत्मा के अलग-अलग होने का पता भी नहीं है और जिन्होंने इस विषय में कुछ पढ़ा या सुना है उन्हें इसका विश्वास भी जल्दी नहीं होता। क्योंकि आत्मा प्रत्यक्ष रूप में दिखाई नहीं देती और जब तक लोग किसी चीज को देख नहीं लेते, उसकी अनुभूति नहीं कर लेते या उसके पुष्ट प्रमाण नहीं मिल जाते, तब तक वे सहसा उस पर विश्वास नहीं करते।

जिस प्रकार दूध में घी मिला हुआ रहता है किन्तु वह दिखाई नहीं देता उसी प्रकार शरीर में आत्मा व्याप्त है किन्तु वह दिखाई नहीं देती। किसी लोहार की दुकान में तेज आग में खूब तपा हुआ लाल-लाल लोहे का गोला देखने वाला मनुष्य समझ जाता है कि लोहा अलग चीज है और गोले की ललाई दूसरी चीज है। उसी प्रकार चिन्तनशील ज्ञानी पुरुष समझता है कि मिट्टी की बनी हुई देह एक चीज है और इस देह को चेतना, जीवन, शक्ति आदि देने वाली आत्मा दूसरी चीज है। वह शरीर में होने वाली अनेक शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं के चितन-मनन द्वारा शरीर और आत्मा के अलग-अलग होने की अनुभूति करने लगता है।

जिस प्रकार तिलो में तेल, वनस्पति में शहद, फूलों में सुगन्ध, काष्ठ में अग्नि, दूध में घी मिला हुआ है उसी प्रकार इस जड भौतिक देह में आत्म-प्रदेश मिले हुए हैं। कुछ भौतिक पदार्थों की मिलावट को तो अलग करके देखा जा सकता है किन्तु शरीर से आत्मा को पृथक् करके इन भौतिक आँखों से नहीं देखा जा सकता। आत्मा के अस्तित्व की तो केवल अनुभूति ही की जा सकती है। शरीर के अन्दर से आत्मा के निकल जाने पर शरीर की क्रियाएँ बंद हो जाती हैं। उसका हिलना-डुलना, बोलना, देखना आदि सब समाप्त हो जाते हैं और वह निर्जीव देह जला दी जाती है या गाड़ दी जाती है।



अदभुत ज्योति है। किन्तु अग्नि, दीपक, बिजली आदि की ज्योति की भाँति इसको मानकर आत्म-ध्यान करना सही ध्यान नहीं है। वह आत्मा ध्यान नहीं है। ऐसा ध्यान तो मात्र पुद्गल का ध्यान नहीं है।

आत्मा अरूपी चेतन द्रव्य है। इसका लाल, पीला, सफेद आदि कोई रंग नहीं है। आत्म ध्यान करते समय किसी रंग का ध्यान करना जड पुद्गल का ध्यान ही है।

आत्मा अमूर्त है, अरूपी है। इसके कोई शब्द रूप, रस, गंध, स्पर्श नहीं है। यह चर्म-चक्षुओ से नहीं देखा जा सकता। ससार के किसी भौतिक पदार्थ से इसकी उपमा नहीं दी जा सकती। इसको केवल, ज्ञान द्वारा ही जाना जा सकता है।

आत्मा के ध्यान करने के सबध में इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि जिस प्रकार सिद्धों का ध्यान उनके गुणों के माध्यम से ही किया जा सकता है उसी प्रकार आत्मा का ध्यान भी आत्मा के गुणों के माध्यम से ही किया जा सकता है। आत्मा में चेतना, ज्ञान, सवेदनशीलता, शक्ति आदि हैं। उन्हीं के ध्यान से आत्मा का ध्यान किया जा सकता है।

आत्मा के स्वरूप का, उसकी शक्ति का यथार्थ ज्ञान ही आत्म-दर्शन के नाम से पुकारा जाता है।

मन सूक्ष्म होते हुए भी पुद्गल है। वह अमूर्त, सूक्ष्म चेतन आत्मा को नहीं देख सकता। महात्मा विनयचदजी ने कहा है—

अनत जिनेश्वर नित नमू अदभुत ज्योति अलेख।

ना कहिये ना देखिये, जाके रूप न रेख॥

सूक्ष्म थी सूक्ष्म प्रभु, चिदानन्द चिद् रूप।

पवन शब्द आकाश थी, सूक्ष्म ज्ञान स्वरूप॥

असल में दीर्घकाल के आत्म-ध्यान के अभ्यास से आत्मा स्वयं ही स्वयं को जान व पहचान सकती है।

आत्मा के ध्यान में मुख्य रूप से तीन बातों की साधना करनी चाहिये। प्रथम, शरीर अलग है और मैं (आत्मा) अलग हूँ। दूसरी, यह शरीर मेरा नहीं है। तीसरी, इस शरीर में जो चेतना है वही मैं (आत्मा) हूँ।

## आत्म ध्यान की विधि

1 आप सीधे खड़े होकर या सीधे बैठकर या सीधे लेटकर, अपने शरीर को देखकर सोचिये—“यह शरीर मैं नहीं हूँ। यह शरीर अलग है, मैं





3 पशु-पक्षियों के शरीर में आत्म तत्त्व का चितन करने से उनके प्रति आप में दया भाव की उत्पत्ति भी सम्भव हो सकेगी। कीड़ों-मकोड़ों में आत्म तत्त्व का चितन करने वाला व्यक्ति अनेक प्राणियों की अनावश्यक हिंसा से बच सकेगा।

4 पृथ्वीकाय, जलकाय, वनस्पतिकाय, अग्निकाय एवं वायुकाय में भी आत्म तत्त्व का विचार करने वाला व्यक्ति इनकी अनावश्यक हिंसा से बच सकेगा।

5 आत्म-ध्यान इस प्रकार भी किया जा सकता है—“इस शरीर में सवेदनशीलता है वही मैं (आत्मा) हूँ।”

6 इस शरीर में जो क्रिया-शक्ति है वही मैं हूँ।

7 इस शरीर का संचालक मैं ही हूँ।

8 इस शरीर में जो जीवन है वही मैं हूँ। मेरे बिना यह निर्जीव, निष्क्रिय, बेकार हो जाता है।

9 जो सब कुछ जानता है, जो ज्ञान-स्वभावी है, चितन के साथ-साथ जिसमें ज्ञान प्रकट होता रहता है वही ज्ञान का भंडार मैं हूँ।

10 जो स्वयं का ध्यान करते हुए स्वयं में लीन होकर आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता वही मैं (आत्मा) हूँ।

11 आत्मा हूँ, आत्मा हूँ, देह से मैं भिन्न हूँ।

कर्म मुक्त होने पर, मैं सिद्ध हूँ, मैं सिद्ध हूँ।

## विकार-निवृत्ति की साधना

आत्म ध्यान की भाँति कषाय या विकार निवृत्ति की साधना भी आत्मा पर आये हुए विकारों को हटाने के लिये अत्यावश्यक है। इसमें 1 अपने अवगुणों की सूची बनाई जावे। 2 उनके लिये पश्चात्ताप किया जावे। 3 किये हुए पापों के लिए प्रायश्चित्त लिया जावे। जैसे कुछ समय के लिये मीठा या नमक छोड़ना, तप करना, दान देना आदि। 4 उन विकारों के गारे में विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया जावे। जैसे उस विकार के प्रकार, कारण, कार्य, हानि, उसके त्याग से लाभ कुछ उदाहरण हैं। उनसे निवृत्त होने के उपाय सोचे जावे। 6 निवृत्ति की साधना की जावे।

इस साधना में स्वाध्याय का प्रमुख स्थान है। हमारे अन्दर साधारणतया जो अवगुण पाये जाते हैं उनमें से कुछ से निवृत्ति पाने के लिये कुछ सूत्र यहाँ दिये गये हैं जिनका नित्य दिन में कई बार चितन व स्वाध्याय किया जाव।



मडराते रहोगे और दुःख पावोगे। दान दो, दान दो, दान दो, सग्रह मत करो, दान दो।

8 विकथा—दूसरे लोगों की बातों की अनावश्यक चर्चा, उनके दोषों का कथन, श्रवण, दर्शन, चिंतन, दुनिया भर को स्वार्थ प्रेरित, स्वार्थभरी, पक्षपातपूर्ण गन्दी राजनीति आदि की बातों के सच्चे-झूठे समाचार, लेख, भाषण एव आलोचनाओं को पढ़ना और उनके सबध में राग-द्वेषात्मक विचारों में पड़ना विकथा अर्थात् व्यर्थ की कथा है। यह भाव हिंसा है, अनर्थ दण्ड है, प्रमाद है, असत्य आचरण है। इससे बचने का साधारण उपाय है—मौन और मित-भाषण (कम बोलना) और वास्तविक अचूक उपाय है सत्संगति, सत्साहित्य का पढ़ना, स्वाध्याय, आत्म-चित्तन, आत्म-ध्यान एव निस्वार्थ निष्काम शुद्ध पर-सेवा में लगे रहना। विकथा भयकर मानसिक रोग है, इससे बचिये, बचिये, बचिये।

मुनि गजसुकुमाल आदि के गुणों का चित्तन कथन विकथा नहीं है। यह गुणानुराग है, प्रमोद भावना है, कर्मों की निर्जरा है और धर्मध्यान है।

9 शील-पालन—सेठ सुदर्शन की शील रक्षा की ओर विजय सेठ और विजया सेठानी के अखंडित शील-पालन की कथा का श्रवण कथन, अध्ययन, अनुमोदन एव ध्यान करने से उत्पन्न हाने वाली शील तरंगों से दृढ़ बनी शील-भावना को ससार की कोई भी शक्ति खंडित करने में समर्थ नहीं है।

10 "शील, शील, शील" की ध्वनि से, जप से, ध्यान से शील के पुद्गल हमारे पास एकत्रित होकर हमें शील पालन में दृढ़ बनाते हैं।

11 "समता, समता, समता" की ध्वनि जप व ध्यान से समता के सूक्ष्म पुद्गल आकर हमें समता पालन में दृढ़ बनाते हैं।

12 सत्य—साधारण मनुष्य से देवता में देवता से तपस्वी में, तपस्वी से सत्यवादी में अधिक शक्ति होती है। सत्य में हजार हाथियों का गठ होता है। सत्यवादी की देवता भी सहायता करते हैं।

13 देहासक्ति हटाने का सूत्र—यह शरीर मेरा नहीं है। यह नाशवान है। यह रोगों का घर है। यह दुःखों की खान है।

14 परिवार मोह हटाने का सूत्र—जब पुण्य तुम्हारे पास नहीं परिवार तुम्हारा क्या करे ?

## अटल सत्य

इस संसार का कोई भी मनुष्य निश्चयपूर्वक यह नहीं जान सकता कि जो कुछ होना है वह अनादिकाल से नियत है। यदि सत्य ही है तो उस नियत काम के हो जाने के बाद फिर संसार में कुछ भी नहीं घटती। अनेको घटनाएँ नियत नहीं हैं। वे अनेक कारणों से घटती रहती हैं तथा संसार को बदलती रहती हैं। इनमें से संसार रहता है। वास्तव में मनुष्य को व्यवहार में इन सबके कारणों से संसार है और यही अनुकम्पा की उत्पत्ति है। यह ही ही अटल सत्य है। मेरी लिखी हुई कषाय-मुक्ति का उद्देश्य ही प्रकृति के प्रभावना आदि के रूप में बँटवाने का ही उद्देश्य है।

— प्राणिक

